26 विकास संबंधी मुद्दे (Development Related Issues)

परिचय (Introduction)

विकास सामाजिक परिवर्तन (Social Change) की एक विशिष्ट और काफी लोकप्रिय प्रक्रिया है। इसके द्वारा एक देश के नागरिक उच्च भौतिक रहन-सहन, स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन के स्तर को प्राप्त करने के साथ-साथ अधिकाधिक मात्रा में शिक्षित होने का प्रयास करते हैं। अन्य शब्दों में, सामाजिक जीवन में गुणात्मक सुधार तथा अधिकाधिक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति को विकास या सामाजिक विकास (Social Development) कहा जाता है। चूंकि विकास की अवधारणा में सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही तरह के विकास को समायोजित किया जाता है, अत: इसमें न केवल परिवर्तन और वृद्धि सम्मिलित रहते हैं अपितु परिवर्तन का अर्थपूर्ण तथा वृद्धि का उद्देश्यपूर्ण होना भी आवश्यक है। यही कारण है कि विकास की अवधारणा के अन्तर्गत निम्नांकित लक्ष्यों को प्रमुखता दी जाती है:-

विकास की अवधारणा के अंतर्गत प्रमुख लक्ष्य (Major Goals under the Concept of Development)

1. भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में आम आदमी के जीवन स्तर में सुधार होना चाहिए, जो उसके जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि के लिए जरूरी होते हैं।
2. संसाधनों, लाभों एवं आय का समान वितरण होना चाहिए ताकि सामाजिक, आर्थिक न्याय को सर्वसाधारण के लिए सुनिश्चित किया जा सके।
3. शक्ति के केंद्रीकरण पर रोक या शक्ति के विकेंद्रीकरण (Decentralisation) पर बल दिया जाना चाहिए ताकि व्यक्तिगत हित के स्थान पर सामूहिक हित सुनिश्चित हो सके।
4. मानव संसाधन का अधिकतम विकास किया जाना चाहिए ताकि विकास के चरम लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

विकास के इन्हीं लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में विकास की अवधारणा पूरी दुनिया में स्वीकार की जाती है और प्रतिदिन विकास के ये आयाम विस्तृत हो रहे हैं और भारत में विकास को इसी रूप में स्वीकार किया जाता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास (Social-Economic Development) के प्रारूप को अपनाया गया। भारतीय संविधान भारत को एक समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक राष्ट्र घोषित करता है जिसका तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से है, जिसमें सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय के साथ ही समानता एवं स्वतंत्रता प्राप्त हो सके। इस संवैधानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्थागत क्रियाविधि की नीति को आत्मसात् किया गया तथा नगरीय विकास एवं ग्रामीण विकास, दोनों ही क्षेत्रों में सक्रिय प्रयास किए गए ताकि 'समेकित विकास' (Integrated Development) के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से आज तक विकास की दिशा में कई प्रयास किए गए। बदलती परिस्थितियों में भारत में विकास के विभिन्न प्रतिमानों को स्वीकार किया गया। समेकित राष्ट्रीय विकास के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और तदनुरूप किए गए प्रयासों का ही फल है कि हमने पिछले 60 सालों में जीवन के प्राय: सभी क्षेत्रों में चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो, विज्ञान हो, तकनीक हो या संचार हो, सफलता के सराहनीय आयाम स्थापित किए हैं और सफलताएं हासिल की हैं। आज हमारे देश की अर्थव्यवस्था विश्व की एक महत्त्वपूर्ण अर्थव्यवस्था है। हमने विकास के सभी क्षेत्रों में वैश्विक पटल पर अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज की है। किन्तु खाद्यान्न, उद्योग, तकनीक, विज्ञान, संचार तथा सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में सारी उपलब्धियां विकास के एक पक्ष को दर्शाती हैं। भारत में विकास का दूसरा पक्ष यह है कि अंधाधुंध औद्योगीकरण, नगरीकरण, तकनीकीकरण तथा संसाधनों के दोहन के परिणामस्वरूप हमारे समक्ष विकास जनित विभिन्न समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं जिन्हें 'विकास का संकट' (Crisis of Development) माना जाता है। अत: हमें अपने विकास के मॉडल पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि विकास से सम्बन्धित निम्न महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर विचार किया जाए:-

विकास एवं विषमता (Development and Disparity)

स्वतंत्र भारत में हुए विकास की उपलब्धियों को समझने के लिए हमें स्वतंत्रता पूर्व भारत की स्थिति से अवगत होने की आवश्यकता है। स्वतंत्रता पूर्व भारत में कृषि की हालत अत्यंत दयनीय हो चली थी। कृषि में बिचौलियों का बोलबाला, पूंजी का अभाव, थोपी गयी वाणिज्यीकरण, कृषक दासता, बेगारी, ऋणजाल, पूंजी की कमी, सिंचाई साधनों तथा उन्नत तकनीकों

के अभाव के कारण कृषि क्षेत्र पिछड़ता चला गया था। फिर भी कृषि पर निर्भर जनसंख्या लगभग 85% थी।

भारतीय उद्योग क्षेत्र में शिल्पों का पतन हो गया था तथा गिने चुने उद्योग ही भारत में लगे थे (जैसे सूती वस्त्र तथा पटसन उद्योग)। पूंजीगत उद्योग जिनसे अन्य उद्योगों को बढ़ावा मिलता है वे नगण्य थे। सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान नहीं के बराबर था। विदेशी व्यापार पर इंग्लैंड ने एकाधिकार (Monopaly) जमा रखा था। जनांकिकीय परिस्थितियाँ जटिल / मुश्किल हालात में थीं। जैसे-जीवन प्रत्याशा-32 वर्ष, शिशु मृत्युदर-218, साक्षरता-16% आदि। आधारिक संरचनाओं का नितांत अभाव था।

स्वतंत्रता के उपरांत, उपरोक्त समस्याओं से निपटने के लिए नेहरू तथा अन्य नेताओं व चिंतकों ने समाधान ढूँढ़ने के प्रयत्न किए।

हमारे सामने अर्थव्यवस्था के दो स्वरूप विद्यमान थे, पूंजीवादी तथा समाजवादी हमारे राजनेता तथा चिंतकों का मुख्य रुझान समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy) की ओर था परन्तु वे इसे दोषमुक्त बनाना चाहते थे अत: एक ऐसी व्यवस्था चुनी गयी जो समाजवादी लक्ष्य रखते हुए समाजवादी अर्थव्यवस्था के दोषों से मुक्त थी। यह मिश्रित अर्थव्यवस्था कहलायी। आज दुनियाँ के अधिकतम देश मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले हैं।

विकास के पथ पर तीव्रता से चलने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का सहारा लिया गया। योजना के चार मुख्य लक्ष्य होते हैं:-

1. ***संवृद्धि (Growth)*** – इसका तात्पर्य क्षेत्र के अन्दर क्षमता निर्माण से है।
2. ***आधुनिकीकरण (Modernization)*** – यह विकास के लिए नई प्रौद्योगिकी के साथ-साथ नई सामाजिक सोच को भी दर्शाता है। जैसे-महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष मानना।
3. ***आत्मनिर्भरता (Self-reliance)*** – जहाँ तक संभव हो स्वयं उत्पादन करना।
4. ***समानता (Equality)*** – देश के अन्दर समता स्थापित करना अर्थात् विकास में सभी की भागीदारी सुनिश्चित करना।

इन सभी लक्ष्यों को एक समान महत्त्व देना संभव नहीं है अत: इनकी प्राथमिकता तय की जाती है तथा इनमें एक संतुलन बनाया जाता है। इन्हें पूरा करने के लिए अन्य तरीकों का सहारा लिया गया। जैसे-सहायिकी, सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों में लाइसेंस द्वारा नियंत्रण, औद्योगिक नीति, लघु उद्योगों को प्रोत्साहन तथा संरक्षण, व्यापार नीति, आयात प्रतिस्थापन (Import Replacement), घरेलू उद्योगों को संरक्षण आदि।

इन सभी उपायों का मिला-जुला असर हुआ। देश विकास के मार्ग पर आगे बढ़ा तथा कई मामलों में आत्मनिर्भर बना, उद्योगों में विविधिकरण बढ़ा, उद्योगों की सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सेदारी बढ़ी। कुछ समस्याओं में कृषि पर से निर्भरता अनुपात कम न होना, सार्वजनिक क्षेत्रक का कार्यकुशल न होना आदि को गिना जा सकता है।

1980 के दशक में अर्थव्यवस्था के अकुशल प्रबंधन (Inefficient Management) कच्चे तेल के आयात, बेरोजगारी, जनसंख्या विस्फोट आदि के कारण सरकार को अपने राजस्व से अधिक खर्च करना पड़ा। अनावश्यक खर्चों के बढ़ने, आयात के बढ़ने तथा वित्त जुटाने के लिए निर्यात संवर्धन पर ध्यान नहीं देने के कारण भारत के लिए भुगतान संतुलन की समस्या आयी और इससे बचने के लिए सरकार को अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के दबाव में 1991 से अर्थव्यवस्था में आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत हुई।

इस उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण का भी देश के विकास पर मिला-जुला प्रभाव पड़ा है।

स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक की विकास यात्रा में हमने काफी विकास किया है फिर भी इस विकास का लाभ सभी वर्गों व सभी क्षेत्रों अर्थात् सभी लोगों को समान रूप से नहीं मिला है। इससे कई प्रकार की विषमताएँ हमारे देश में देखने को मिल जाती हैं। आजादी के बाद हमारा जोर उद्योगों की स्थापना करके भारत की प्रतिव्यक्ति आय (Percapita Income) को बढ़ाना था। प्रतिव्यक्ति आय बढ़ने के साथ-साथ आय की विषमता भी बढ़ने लगी। अमीर लोग और अमीर होते गए तथा गरीब लोग गरीबी में ही रह गए। विश्व बैंक के निर्धनता मानक (एक डॉलर प्रतिदिन से कम पाना) के अनुसार भारत में अभी भी 35% लोग निर्धनता रेखा से नीचे हैं। यह स्वतंत्रता के 6 दशकों बाद भी आय की भारी विषमता को दर्शाता है। इस विषमता के कारण देश का विकास भी अवरुद्ध होता है। यदि लोगों के पास आय नहीं होगी तो उनके पास क्रयशक्ति (Purchasing Power) का अभाव होगा, इससे वे वस्तुओं की कम मांग करेंगे तथा एक बड़े बाजार का अभाव बना रहेगा। कम आय के कारण व्यक्ति उद्यमशीलता की ओर अग्रसर नहीं हो पाएंगे क्योंकि उनकी जोखिम न लेने की प्रवृत्ति जारी रहेगी साथ ही कम आय वाले वर्गों को साख उपलब्धता में भी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि सर्वाधिक गरीबी कृषि क्षेत्र में दिखाई पड़ती है।

हमारे देश में साख उपलब्धता में भी यह विषमता दिखती है कि संपत्तिशाली वर्गों को उचित दर पर तथा औपचारिक क्षेत्रों यथा बैंकों से ऋण उपलब्ध होता है, परन्तु निर्धनों तक इस साख की पहुँच नहीं है।

विकास से उपजी विषमताओं में क्षेत्रीय विषमता भी देखने को मिलती है। भारत के अनेक राज्य विकास में आगे हैं जैसे-पंजाब,

हरियाणा, गुजरात, महराष्ट्र, केरल जबकि कई राज्य जैसे-बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश, ओडिशा आदि इस दौड़ में पिछड़ गए हैं। पिछड़े क्षेत्रों में और अन्य समस्याएँ भी अपनी जड़ें जमा रही हैं जैसे नक्सलवाद, उग्रवाद। ज्यादातर पिछड़े राज्य ही इन चरमपंथी विचारधाराओं की चपेट में आए हैं। आज ये समस्याएँ इतनी गहरी हो गयी हैं कि ये देश के समग्र विकास को ऋणात्मक रूप से प्रभावित कर रही हैं। इन समस्याओं का समाधान इन क्षेत्रों को विकास में हिस्सेदारी देकर ही किया जा सकता है।

हमने कृषि में विकास के लिए हरित क्रांति को अपनाया परन्तु इसका लाभ भी कुछ विशेष राज्यों को ही ज्यादा मिल पाया। भारत के गांवों व शहरों में भी काफी विषमताएँ हैं। विकास का ज्यादातर लाभ शहरों में पहुँचा है। शहरों या उनके आसपास ही ज्यादातर उद्योग लगे, रोजगार का निर्माण हुआ तथा अन्य जन सुविधाएँ जैसे-स्कूल, कॉलेज अस्पतालों आदि का विकास हुआ। गाँवों में इनका विकास बहुत सीमित रूप में हो पाया।

आधारिक संरचनाओं (Infrastructures) के विकास में भी इसी प्रकार की विषमताएँ दिखती हैं। शहरी क्षेत्रों तथा उद्योगों के लिए ज्यादा आधारिक संरचनाओं का विकास हुआ। हालांकि अब सरकार ने गाँवों की आधारिक संरचना के विकास के लिए सड़क निर्माण तथा विद्युतीकरण पर ध्यान दिया है परन्तु अभी भी गाँवों की मुख्य गतिविधि कृषि में संरचना निर्माण का कार्य गति नहीं पकड़ पाया है।

उदारीकरण का भी अधिकतम लाभ शहरों को ही मिला है बहुराष्ट्रीय कंपनियों (Multinational Companies) ने वहीं निवेश किया है जहाँ आधारिक संरचना मजबूत थी, जहाँ एक बड़ा क्रेता वर्ग था तथा ऐसे ही क्षेत्रों में निवेश भी किया जैसे-टेलीकॉम, बैंकिंग आदि।

शहरों में भी एक वर्ग अमीरों का है तो एक वर्ग मलिन बस्तियों में निवास करने वालों का जिनकी पहुँच आवश्यक जनसुविधाओं पानी, बिजली, स्वास्थ्य आदि तक बहुत कम या कठिनाई से हो पाती है। ये वर्ग ग्रामीण शहरी विषमता के कारण गांवों से शहरों की ओर रोजगार की तलाश में आते हैं। शहरों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले ये लोग विकास का लाभ नहीं प्राप्त कर पाते हैं। इनके विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। ये अवसर, ग्रामीण क्षेत्र में आधारिक संरचनाओं का विकास करके, ग्रामीण क्षेत्रों में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देकर, कृषि कार्य के लिए साख उपलब्धता प्रदान करके बढ़ाए जा सकते हैं।

हमारे विकास में आर्थिक क्षेत्रकों (Economic Sectors) के योगदान में भी एक विषमता दिखती है। अन्य देशों में मुख्य रूप से कृषि के बाद उद्योग क्षेत्र का विकास तथा जीडीपी में योगदान ज्यादा होता है फिर सेवा क्षेत्र का परन्तु भारत में उद्योग क्षेत्र को पीछे छोड़ते हुए सेवा क्षेत्र ने जीडीपी में सर्वाधिक योगदान देना शुरू कर दिया। कृषि का योगदान जीडीपी में तो घटा है, परन्तु आज भी कृषि रोजगार में सर्वाधिक श्रमशक्ति (Labor forces) का उपयोग हो रहा है। यह स्थिति प्रछन्न बेरोजगारी के कारण होती है। औद्योगिक (विनिर्माण) क्षेत्रक के पर्याप्त विकास नहीं हो पाने के कारण भारत में रोजगार निर्माण की दर धीमी रही। इसी कारण भारत में यह आर्थिक क्षेत्रक विषमता दिखती है जिसमें जीडीपी में तो सर्वाधिक योगदान सेवा क्षेत्र का है, परन्तु रोजगार में सर्वाधिक निर्भरता कृषि (प्राथमिक क्षेत्र) में है।

इस विकास के साथ सामाजिक क्षेत्र में भी कई विषमताएँ प्रकट हुई हैं। विकास की हमारी यात्रा में कई वर्ग पीछे छूट गए। भारत में सामाजिक विषमता तो पहले से ही विद्यमान थी, विकास में भी इन्हें उचित भागीदारी नहीं मिल पायी। अनुसूचित जाति तथा जनजाति के कल्याण के लिए नाकाफी उपाय हुए। बाद में 90 के दशक में उदारीकरण के बाद कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ भारत आयीं तथा इन्होंने जनजातीय क्षेत्रों में खनन तथा ऊर्जा उत्पादन के कार्य शुरू किए। इसने देश का विकास तो किया पर जनजातियों और आदिवासियों के लिए यह नुकसानदायक रहा।

उनकी जमीन छीनी गयी, श्रमिक के रूप में भी उनका शोषण हुआ, उनकी आजीविका पर उल्टा असर हुआ। उदाहरण के रूप में देखें तो इस्पात कम्पनी पोस्को को इन्हीं सब कारणों से विरोधों का सामना करना पड़ा। भारी मात्रा में जमीन के अधिग्रहण से आदिवासी अपने संसाधनों से वंचित हुए। कंपनी के द्वारा फैक्ट्री स्थापना से महानदी के पानी का उपयोग किया गया तथा पानी में फैक्ट्री का कचरा आने से पानी दूषित हुआ। इन सबके अलावा प्रभावित होने वाले जनजातियों तथा मछुआरों को इसके लाभ में कोई भी हिस्सा नहीं मिल पाया। इन सब कारणों से इस प्रकार के विरोधों का उठना जारी रहेगा तथा अंतिम रूप से यह विकास को अवरुद्ध करेगा।

इन समस्याओं के उचित निपटारे की आवश्यकता है। इस विकास ने शिक्षा के क्षेत्र में भी विषमता को जन्म दिया है जैसे मेडिकल, फार्मा, इंजीनियरिंग, एम.बी.ए. आदि की पढ़ाई तथा शिक्षा संस्थानों में एक बड़ा उछाल आया है परन्तु कला क्षेत्र के शिक्षण संस्थान तथा विद्यार्थियों की संख्या में उस अनुरूप वृद्धि नहीं हो पायी।

ग्रामीण-शहरी, संपन्न-निर्धन, पुरुष- महिला विषमता के समानुपाती ही शिक्षा का स्तर भी इन क्षेत्रों में इसी अनुरूप ज्यादा या कम है। इसी प्रकार स्वास्थ्य सुविधाओं की पहुँच में भी क्षेत्रवार, राज्यवार अंतर पाया जाता है।

विकास और वैयक्तिक विषमता (Development and Individual disparity)

जैसा कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि आर्थिक सुधारों (Economic Reforms) के लिए हमें कई तरह की नीतियाँ लागू करनी पड़ीं जिससे कि अर्थव्यवस्था में सुधार के लिए हमें अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से आर्थिक सहायता मिल सके। इसके लिए हमें अपनी राजकोषीय नीति, व्यापार नीति, कर नीति, मुद्रा

बाजार की नीति आदि में परिवर्तन करना पड़ा। इन परिवर्तनों का उद्देश्य आर्थिक घाटे को कम करना था घाटे को रोकने के लिए उठाए गए कदमों का प्रभाव सभी वर्गों पर एक समान नहीं पड़ा। इसका प्रभाव कुछ इस प्रकार हुआ कि गरीब और गरीब होते गए तथा अमीर और अमीर हो गए अर्थात् अमीरी और गरीबी का फासला बढ़ता चला गया। अनुमान है कि 10% आबादी के पास 90% संसाधनों का संकेन्द्रण है तथा 90% आबादी के पास मात्र 10% संसाधन उपयोग के लिए उपस्थित हैं।

वैयक्तिक विषमता के कारण
(Causes of Individual Disparity)

राजकोषीय घाटे (Fiscal Deficit) को कम करने के दबाव के कारण भारत को अपने खर्च में कटौती करनी पड़ी। वहीं कर को और कम करने पर बल दिया गया ताकि बाजार ज्यादा कुशलता से कार्य करे। इस कारण सरकार ने 90 के दशक में खर्च में कटौती की। सरकार चालू खर्चों को रोकने में असहज थी अत: पूंजीगत व्यय (Capital Expenditure) को कम किया गया। कृषि, ग्रामीण विकास, आधारभूत संरचना विकास तथा उद्योग पर सरकारी खर्च को कम कर दिया गया। इससे पहले ही नाजुक हालात से गुजर रही आधारभूत संरचना जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि पर बुरा प्रभाव पड़ा।

खर्च को कम करने के लिए खाद्य पदार्थों पर दी जाने वाली सब्सिडी को भी कम किया गया। इसका प्रभाव सरकार की सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) पर पड़ा जो खाद्य पदार्थ का एक सस्ता जरिया था। सरकार ने यहाँ लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की शुरूआत की जिसमें गरीबी रेखा के नीचे के लोगों के लिए ही खाद्यान्न का प्रबंध था। एफ.सी.आई. के आर्थिक लागत को निकालने के लिए सरकार ने खाद्यान्नों की कीमत भी बढ़ाई। इससे गरीबी रेखा से ऊपर के लोगों के लिए खाद्यान्नों का मूल्य दो गुना हो गया। इस काल में गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए भी खाद्यान्नों की कीमत में 80% तक का इजाफा हो गया। कई बड़ी सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों में खर्च को कम करने के लिए छंटनी की गयी। इससे बड़े पैमाने पर रोजगारों का विनाश हुआ और लोगों की आय में विषमता बढ़ गयी। बड़े पैमाने पर विनिवेश (Disinvestment) तथा सरकार द्वारा बाजार से हाथ खींचने से बाजार भी प्रभावित हुआ। कई आवश्यक वस्तुओं का निर्माण निजी हाथों में चला गया तथा ये इकाईयाँ प्रतिद्वंद्वी कम्पनियों को बेच दी गयी। इससे रोजगार में कमी के साथ वस्तुओं के मूल्य में भी वृद्धि हुई।

स्वास्थ्य सेवाओं की अपर्याप्तता तथा मंहगाई के कारण निर्धन अपनी स्वास्थ्य आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पाते हैं तथा स्वास्थ्य की असमर्थता के कारण इनकी जीवन प्रत्याशा में काफी कमी आ जाती है। इसके अलावा बीमार व्यक्ति रोजगार भी नहीं कर पाते, अत: वे गरीबी में जीने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

इसी प्रकार अविकसित इलाकों में जहाँ ज्यादातर निर्धन वास करते हैं स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रसार नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में भी विषमता का स्तर आर्थिक विषमता के समानुपाती है। शिक्षा व्यापार की तरह फैल रही है तथा अच्छी शिक्षा अच्छे मूल्य की माँग कर रही है। सरकार का आधारभूत ढाँचा शिक्षा में भी कमजोर है। सरकारी स्कूलों तथा कॉलेजों में कहीं शिक्षक का अभाव है तो कहीं प्रयोगशालाओं का तो कहीं खेल के मैदान का। अच्छी शिक्षा नहीं मिलने से सामान्य व्यक्ति के लिए अच्छी नौकरी पाना असंभव सा हो जाता है।

उपभोग के स्तर पर भी वैयक्तिक विषमता दिखती है। एक अध्ययन के अनुसार जब व्यक्ति उपभोग (Consumption) करता है तो संसाधन विहीन लोगों को अपनी आय से अधिक खर्च करना पड़ता है या अपने उपभोग पर अंकुश लगाना पड़ता है, वहीं ज्यादा आय वाले लोग ज्यादा खर्च करने के बावजूद बचत कर पाते हैं। इससे उपभोग आधारित विधि से विषमता की माप के सही आंकड़े प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है।

शहरी परिवारों की औसत आय ग्रामीण परिवारों की औसत आय का लगभग दो गुनी है। समुदायों के स्तर पर भी शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, आय आदि में विषमता काफी दिखाई पड़ती है। दलित तथा आदिवासी सामुदायिक स्तर पर सबसे पिछड़े हुए हैं। इनके बाद पिछड़ी जातियों तथा मुस्लिम समुदाय का नम्बर आता है।

सभी आय समूहों में वेतनभोगी ऊंचे स्तर पर हैं। सबसे खराब स्थिति में छोटे, सीमांत कृषक तथा कृषि मजदूर हैं।

वैयक्तिक विषमता कम करने हेतु सुझाव
(Suggestions to Reduce Individual Disparity)

1. विषमता को दूर करने के लिए केन्द्रीय योजनाओं (Central Schemes) में सार्वजनिक सेवाओं पर खर्च को बढ़ाने की आवश्यकता है।
2. सार्वजनिक सेवाओं के माध्यम से रोजगार सृजन भी किया जा सकता है जिससे आय की विषमता कम हो।
3. सभी क्षेत्रों में आधारभूत संरचना का विकास करके लोगों को उचित मूल्य पर गुणवत्तायुक्त सेवा प्रदान करके आय की विषमता के प्रभाव को कम किया जा सकता है।
4. रोजगार सृजन के लिए गुणवत्तायुक्त शिक्षा तथा रोजगार परक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाकर मानव संसाधन विकसित किया जा सकता है जो विकास से उपजे अवसरों का लाभ लेने को तैयार रहे।
5. कृषि क्षेत्र से अनावश्यक श्रमबल को उद्योगों की ओर स्थानांतरित करने के लिए उद्योगों को बढ़ावा दिया जा सकता है।
6. सभी क्षेत्रों की तरह कृषि में भी ऋण व्यवस्था को और अधिक मजबूत करने की आवश्यकता है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार मनरेगा ने 32% तक गरीबी को कम किया है और लगभग 14 लाख लोगों को गरीब होने से बचाया है। कई महिलाओं के लिए नकद आय अर्जित करने के लिए मनरेगा पहला अवसर था। इससे संसाधनों पर महिलाओं के नियंत्रण में पर्याप्त वृद्धि हुई है तथा उनके हाथ में पैसा आया है और उनका बैंक खाता खुला। मनरेगा का लाभ लेने वाले घरों के बच्चों में शिक्षा का उच्च स्तर प्राप्त करने की संभावना अधिक रही है।

विश्व बैंक की नवीनतम महिला व्यापार और कानून संबंधी रिपोर्ट में यह प्रदर्शित किया गया है कि जिन देशों के कानूनों में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव होता हैं और लैंगिक समानता (Gender Equality) को बढ़ावा नहीं दिया जाता है ऐसे देश आर्थिक रूप से पिछड़े हैं।

विकास और क्षेत्रीय विषमता (Development and Regional Disparity)

भारत में क्षेत्रीय विषमता सर्वाधिक बहस का विषय बना हुआ है। भारत की क्षेत्रीय विषमता को देखने के लिए हम मुख्यत: 15 बड़े राज्यों को देख सकते हैं। इन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है। विकसित राज्य तथा पिछड़े राज्य। पहली श्रेणी के राज्य हैं–आंध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, पंजाब और तमिलनाडु तथा दूसरी श्रेणी में आते हैं–असम, बिहार, मध्य प्रदेश, ओडिशा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल।

भौगोलिक रूप से विकसित राज्य भारत के दक्षिणी तथा पश्चिमी भागों में स्थित हैं। 2001 के जनगणना आंकड़ों के अनुसार भारत के विकसित राज्यों में 40.4% जनसंख्या हैं तथा पिछड़े राज्यों में 55.1%। प्राकृतिक संसाधनों, पानी, मिट्टी की उर्वरता (Fertility) आदि के मामले में पिछड़े राज्य विकसित राज्यों से आगे हैं।

विकसित राज्यों की जनसंख्या वृद्धि दर राष्ट्रीय जनसंख्या वृद्धि दर से कम है तथा पिछड़े राज्यों की अधिक। यह विकास तथा विषमता के स्तर को दर्शाता है। यहाँ तक कि केरल की जनसंख्या वृद्धि दर 1.5 है जो मिलेनियम डेवलपमेंट गोल (MDG) 2015 के लक्ष्य से भी कम है।

विकसित राज्यों की शिक्षण दर (Literacy Rate) भी राष्ट्रीय औसत से अधिक है। केरल की शिक्षा दर तो 90% से भी अधिक है। पिछड़े राज्यों में यह दर राष्ट्रीय दर से नीचे है।

आय के मामले में भी स्थिति कमोबेश उपरोक्त की तरह ही है। यह सर्वविदित है कि आर्थिक सुधार (90–91) के बाद यह विषमता और भी बढ़ी है क्योंकि कम्पनियाँ वहीं निवेश करना चाहती हैं जहाँ आधारभूत संरचना मौजूद हो। इस प्रकार विकसित राज्य और विकसित होते जाते हैं तथा पिछड़े राज्य पिछड़ते जाते हैं।

बैंकों के जमा तथा ऋण पैटर्न को देखें तो यह देखा गया है कि अगड़े राज्यों में जमा दर ज्यादा है तथा ऋण में हिस्सेदारी और भी ज्यादा है अर्थात् जमा से ज्यादा हिस्सेदारी ऋण में है। पिछड़े राज्य कम जमा कर पाते हैं, परन्तु उन्हें ऋण उससे भी कम मिला है। यह पिछड़े राज्यों के विकास में बाधा उत्पन्न करता है।

क्षेत्रीय विषमता में राज्य–राज्य विषमता के अलावा अंतरा–राज्य विषमता भी देखने को मिलती है जैसे–महाराष्ट्र जैसे विकसित राज्य का विदर्भ क्षेत्र काफी पिछड़ा हुआ है। राज्यों के विभाजन की माँग भी इसी प्रकार की विषमताओं के कारण उपजती है। मध्य प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश तथा अभी हाल ही में आंध्र प्रदेश आदि के बंटवारे के पीछे इसी प्रकार के कारण रहे हैं।

इसके अलावा पिछड़े इलाकों में असंतोष के कारण अतिवाद (Extremism) को भी पनपने का मौका मिलता है। नक्सलवाद तथा आतंकवाद इसी के उदाहरण माने जा सकते हैं।

क्षेत्रीय विषमता के कारण (Causes of Regional Disparity)

क्षेत्रीय विषमता के कई कारण हैं। इसमें मुख्य हैं:–

1. ***भौगोलिक कारक (Geographical Factors)–*** कई राज्य तथा राज्यों के क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से आर्थिक कार्यों के लिए अनुपयुक्त होते हैं, जैसे राजस्थान, उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्र आदि।
2. ***ऐतिहासिक कारक (Historical Factors)–*** कुछ राज्य जो पहले राजाओं के अंतर्गत थे उनमें वे राज्य प्रगति कर पाए जिनके शासक दूरदर्शी थे जैसे–कोचीन, त्रावणकोर आदि, वहीं तेलंगाना तथा दक्कन के अन्य क्षेत्र इस प्रकार के शासक नहीं होने के कारण पिछड़ गए।
3. ***राजनीतिक कारक (Political Factors)–*** किसी राज्य में शासन मुख्यत: अगड़े क्षेत्र से आए प्रतिनिधि चलाते हैं इससे पिछड़े क्षेत्र उपेक्षित रह जाते हैं।
4. ***भूमि सुधार की उपेक्षा (Negligence of Land Reforms)–*** कई राज्यों में उर्वर भूमि होने के बावजूद भूमि सुधार न होने के कारण कृषि पिछड़ी हुई है तथा वे राज्य पिछड़े राज्यों में गिने जा रहे हैं, जैसे–बिहार।
5. ***अवसंरचनाओं का आभाव (lack of Infrastructures)–*** जिन राज्यों में अवसंरचना की कमी है वहाँ कोई भी

उत्पादक कार्य सही से नहीं हो सकता। वहाँ कोई उद्योग भी नहीं चलाए जा सकते, क्योंकि बिजली, पानी, सड़क जैसी सुविधाओं के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता।

क्षेत्रीय विषमता को कम करने हेतु सुझाव (Suggestions to Reduce Regional Disparity)

1. पिछड़े राज्यों की समस्या को ध्यान में रखकर एक समिति का गठन होना चाहिए जो पिछड़े राज्य/क्षेत्रों की समस्या को पहचान कर उपयुक्त उपायों के साथ प्रभावित क्षेत्र को सहायता प्रदान कर सके।
2. पिछड़े राज्यों में अवसंरचना (Infrastructure) निर्माण पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। स्कूल, कॉलेजों की स्थापना तथा उसकी गुणवत्ता को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।
3. पिछड़े क्षेत्रों में सार्वजनिक सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करवा कर जीवन स्तर को सुधारा जा सकता है।
4. रोजगार के अवसरों का सृजन इन क्षेत्रों में किया जा सकता है जिससे यहाँ आय का सृजन हो। इसके लिए स्वरोजगार को बढ़ावा देना चाहिए।
5. पिछड़े क्षेत्रों में गरीबों को उचित दर पर ऋण की व्यवस्था करवा कर उन्हें गरीबी से निकाला जा सकता है।
6. पिछड़े इलाकों के उत्थान के लिए तथा वहाँ जागरुकता (Awareness) फैलाने के लिए गैर-सरकारी संगठनों की मदद ली जा सकती है।
7. पिछड़े क्षेत्रों के उत्थान के लिए अलग से क्षेत्रीय कार्यक्रम चलाए जा सकते हैं।
8. पिछड़े तथा भौगोलिक, सामाजिक रूप से अलग क्षेत्रों के लिए विशेष प्रकार की स्वायत्ता (Autonomy) के साथ विशेष विभाग या आयोग या संस्था की स्थापना की जा सकती है।
9. पंचायतों को विशेष पैकेज देकर उन्हें क्षेत्रीय विकास में ज्यादा हिस्सेदारी निभाने का मौका देना चाहिए।

विकास और शहरी-ग्रामीण विषमता (Development and Urban-Rural disparity)

भारत में लगभग 6 लाख 40 हजार गाँव हैं। यह मुख्यत: गांवों का देश कहलाता है। भारत के विकास के साथ भारत में शहरीकरण की दर भी बढ़ रही है तथा शहरों के आकार और संख्या दोनों में वृद्धि हुई है।

गाँव की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि आधारित होती है तथा शहर में औद्योगिक केन्द्र होते हैं। जिस प्रकार कृषि क्षेत्र तथा उद्योग क्षेत्र की आय में अंतर बढ़ रहा है उसी प्रकार शहरी-ग्रामीण विषमता भी बढ़ रही है। आर्थिक सुधारों के पश्चात् रोजगार के नवीन अवसरों का सृजन (Creation) हुआ है, परन्तु मुख्यत: शहरी शिक्षित वर्ग को ही अधिक अवसर उपलब्ध हुआ है, जिसने शहरी-ग्रामीण विषमता की खाई को चौड़ा कर दिया है। आज शहरों में अच्छे-अच्छे स्कूल, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित हैं, वहीं कई गांवों में अभी तक स्कूल नहीं खुल पाए हैं। ग्रामीण तथा शहरी सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता जैसे-स्वास्थ्य सेवा, परिवहन सेवा आदि में भारी अंतर दिख जाता है। शिक्षा तथा उससे उपजी जागरुकता में भी शहरी- ग्रामीण परिवेश का अन्तर दिखता है।

शहरी-ग्रामीण विषमता का कारण (Causes of Urban-Rural Disparity)

1. भारत के कृषि क्षेत्र में रोजगार तथा मजदूरी दोनों 90 के दशक में थम सी गयी थीं। अगर कृषि क्षेत्र की मजदूरी तथा सार्वजनिक क्षेत्र की मजदूरी में तुलना की जाए तो हम पाते हैं कि 90 के दशक में कृषि मजदूरी जहाँ 2.5% की दर से बढ़ी थी, वहीं सार्वजनिक क्षेत्र में मजदूरी में तेजी से वृद्धि हुई।
2. कृषि क्षेत्र के रोजगार नियमित नहीं होते हैं। ये अनियमित मजदूर की तरह होते हैं तथा साल के कुछ समय बेरोजगार भी रहते हैं।
3. गाँवों में आय शहरों के मुकाबले कम होती है, अत: यहाँ के लोगों के द्वारा उपभोग भी कम किया जाता है।
4. गाँवों में शिक्षण संस्थाओं के अभाव तथा निम्न गुणवत्ता के कारण यहाँ साक्षरता दर भी शहरों की अपेक्षा बहुत कम पायी जाती है। यह अन्तर महिलाओं के मामले में और ज्यादा बढ़ जाता है।
5. 1990 के बाद कई नीतियाँ, जिसने ग्रामीण विकास तथा गरीबी उन्मूलन में सहयोग किया था, को बदल दिया गया। राजकोषीय खर्च को कम करने के लिए सरकार ने कृषि योजनाओं, ग्रामीण रोजगार तथा गरीबी उन्मूलन की योजनाओं में कटौती कर दी।
6. 1990 से पहले बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में साख उपलब्ध करवा रहे थे। आर्थिक सुधारों तथा बेसल नियम आने के बाद बैंक अपनी ऋण नीतियों में सख्त हो गए।
7. गाँवों में आधारभूत अवसंरचनाओं का अभाव होने के कारण उद्योग धन्धों एवं सेवा क्षेत्रक संस्थाओं की स्थापना नहीं हो पाती।
8. हमारे विकास के मॉडल में बड़े उद्योग धन्धों पर बल दिया जाता है, जबकि गाँव आधारित लघु-कुटीर उद्योग (Small Scale Cottage Industries) को उपेक्षित किया गया है।

शहरी-ग्रामीण विषमता को कम करने हेतु सुझाव (Suggestions to Reduce Urban-Rural Disparity)

1. ग्रामीण क्षेत्रों में मानव संसाधन विकास की सुविधाओं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा आदि को बढ़ावा देना चाहिए।
2. आधारभूत अवसंरचनाओं जैसे-सड़क, बाजार, पुल आदि का विकास होना चाहिए।
3. रोजगार का सृजन करने के लिए बिजली, पानी इत्यादि संरचना विकास के साथ क्षेत्रानुसार प्रसंस्करण उद्योग (Processing Industry) को बढ़ावा देने से रोजगार विकास के साथ कृषि विकास भी संभव होगा तथा कृषि उत्पादों को सही मूल्य मिल पाएगा।
4. हमें ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए दीर्घावधि योजनाओं को अपनाना चाहिए।
5. कई संसाधन जो गाँवों में अनुपयोगी (Useless) होकर पड़े हैं उन्हें उपयोग के लायक बनाकर उसका समुचित लाभ गांव के लोगों तक पहुँचाना चाहिए।
6. सूचना प्रौद्योगिकी तक पहुँच देकर ग्रामीण क्षेत्रों को जागरुक बनाया जा सकता है।
7. ग्रामीण विकास के लिए सहभागी विकेन्द्रीकृत योजना का निर्माण करना चाहिए।
8. पुरा (PURA) के सुझावों को पूरी तरह से लागू करने की कोशिश की जानी चाहिए।

विकास एवं पर्यावरण (Development and Environment)

परिचय (Introduction)

विकास ऐसा सामाजिक आर्थिक परिवर्तन है जो जटिल सांस्कृतिक तथा पर्यावरणीय कारकों (Cultural and Environmental Factors) और इनके मध्य परस्पर अंत: क्रियाओं पर आधारित होता है। यह मनुष्य के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति करने का द्योतक है जिसका प्रत्यक्ष व सकारात्मक प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है और व्यक्ति का जीवन सुखमय होता जाता है। उदाहरण के लिए यदि मनुष्य को अच्छी शिक्षा मिले तो वह अपने आय के स्रोत बढ़ा सकता है, अच्छे बुरे का फर्क आसानी से समझ सकता है, दूसरों का तथा अपना दुख और उसका कारण समझ सकता है। इन सभी का प्रयोग वह अपने परिवार व अपने समाज की भलाई तथा बेहतरी के लिए कर सकता है। इसी प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में प्रगति से व्यक्ति दीर्घायु हो सकता है तथा उन बीमारियों से दूर रह सकता है जो उसे एक अच्छा तथा सुखमय जीवन जीने से दूर करती हैं।

इन्हीं कारकों को ध्यान में रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा देशों ने विकास को मापन के लिए आय, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता जैसे विषयों को मानक के रूप में अपनाया है।

इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण आय को माना गया है क्योंकि बाकी सभी सुविधाओं को इसी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

किसी जीव या जीव समूह (Group of Organisms) के आस-पास के वातावरण को पर्यावरण कहा जाता है। इस वातावरण में जैविक तथा अजैविक दोनों प्रकार के कारक होते हैं। जैविक कारक का तात्पर्य वहां बसने वाले अन्य जीवों या इनके समूह से है। जैसे एक शेर के पर्यावरण में हिरण, सांप, कीट पतंगे तथा पेड़-पौधे इत्यादि हो सकते हैं। अजैविक कारक उस वातावरण के निर्जीव घटकों को कहा जाता है, जैसे-गैस, भू-आकृति, जल इत्यादि।

ये जैविक एवं अजैविक कारक अपने पर्यावरण में जीवों पर प्रभाव डालते हैं तथा खुद भी उनसे प्रभावित होते हैं। यहाँ तक कि ये जैविक, अजैविक घटक एक दूसरे को भी प्रभावित करते रहते हैं।

जीव पर पर्यावरण का इतना प्रभाव होता है कि उन्हें पर्यावरण के हिसाब से अनुकूलित (Adapted) होना पड़ता है या वे वहां से विलुप्त हो जाते हैं। पर्यावरण में धीमा परिवर्तन हो तो जीव-जन्तु आसानी से अपने पर्यावरण के हिसाब से अनुकूलित हो जाते हैं परन्तु यदि पर्यावरण में परिवर्तन तीव्र हो तो जीव-जन्तुओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है उनकी संख्या कम हो सकती है, यहाँ तक कि वे विलुप्त भी हो सकते हैं।

सभी जीव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण पर निर्भर करते हैं। वे अपने पर्यावरण से ही खाना, पानी, आश्रय प्राप्त करते हैं तथा अपना विकास करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी अपने विकास के लिए अपने पर्यावरण पर निर्भर होता है। भोजन के लिए अनाज, फल, सब्जियाँ सभी पर्यावरण से प्राप्त होते हैं। शिक्षा के लिए कागज, पहनने के लिए कपड़े, स्वास्थ्य के लिए दवाईयाँ सभी चीजें पर्यावरण से प्राप्त संसाधनों पर ही निर्भर करती हैं। जिस देश के पास जितने ज्यादा संसाधनों पर नियंत्रण है, वह देश उतना ही संपन्न है तथा वही देश सबसे अधिक विकसित भी है।

विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया (Process) है इसलिए हमें निरंतर संसाधनों की भी आवश्यकता होती है। पर्यावरण में इन संसाधनों को प्रदान करने की क्षमता होती है, परन्तु प्रकृति भी इसे एक सीमा तक ही संभाल सकती है यदि संसाधनों का दोहन (Exploitation of Resources) इसकी चरम सीमा से अधिक होने लगे तो पर्यावरण पर इसका प्रभाव नकारात्मक रूप में सामने आने लगता है।

औद्योगिक क्रांति के बाद विकास ने एक नया रूप ले लिया है। इसमें अधिक और तीव्र उत्पादन पर बल दिया गया है। इससे प्रकृति पर विजय पाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक दोहन हुआ तथा दूसरी ओर पर्यावरण में औद्योगिक अपशिष्ट पहुँचने लगे।

इनके अलावा मानव के विलासितापूर्ण आवश्यकताओं तथा औद्योगिक मशीनों के लिए ऊर्जा की आवश्यकता ने वन विनाश तथा जीवाश्म ईंधनों के दोहन तथा उपयोग को बढ़ावा दिया है। कृषि में प्रगति के लिए भी जंगलों का विनाश हुआ, रासायनिक खादों तथा कीटनाशकों का प्रयोग किया गया।

उपरोक्त सभी कारणों से भूमि, वन, जल, नदी, तालाब, वायु सभी का दोहन तथा प्रदूषण बढ़ा और वैश्विक उष्मन, जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता की कमी, जल संकट, कई प्रकार की बीमारियों जैसे दुष्प्रभाव सामने आने लगे।

पर्यावरणीय समस्याओं का स्वरूप (Nature of Environmental Problems)

भारतीय समाज में तमाम पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा होने लगी हैं। पर्यावरणीय समस्या भारत में निम्न स्वरूपों में दिखाई दे रही हैं:-

जल प्रदूषण (Water Pollution)

भारत गंगा, यमुना, कृष्णा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी जैसी अनेक नदियों का राष्ट्र है। ये नदियां जीवन का स्रोत ही नहीं हैं अपितु भारत की जनता के लिए धार्मिक महत्त्व की भी हैं। इसके अतिरिक्त उदयपुर, नैनीताल, भीमताल, ऊटकमंड की अनेक झीलें भी यहाँ विद्यमान हैं। सम्पूर्ण उपलब्ध जल मुख्यत: नदियाँ एवं झील का 70 प्रतिशत भाग अत्यधिक दुरुपयोग से प्रदूषित हो गया है। सम्पूर्ण भारत में नदियों और झीलों का पानी प्रदूषित हुआ है क्योंकि इसमें मलमूत्र, औद्योगिक बर्हि:स्राव डाल दिया जाता है। डिटर्जेंट से निरंतर कपड़ों की धुलाई ने भी हमारे जल संसाधनों को बुरी तरह प्रदूषित किया है। पवित्रता की द्योतक गंगा और यमुना नदियों में उद्योगों से निरंतर रासायनिक बर्हि:स्राव डाला जा रहा है। नदियों के साथ देश की प्रमुख झीलें भी प्रदूषण से अछूती नहीं हैं। डल झील और नैनीताल को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।

जल प्रदूषण का प्रमाण नालियों की खराब जल निकासी व्यवस्था से भी मिलता है। गंदी नालियों से पैदा होने वाली बीमारियां तथा मानवीय बस्तियों (Township) से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ प्रमुख प्रदूषक हैं। प्रदूषण का इतना व्यापक होना गंभीर चिन्ता का विषय है। यह देखने में आया है कि टाइफाइड, हैजा व पीलिया जैसी जल से फैलने वाली दो तिहाई बीमारियाँ बहुत गंभीर स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न करती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के अनुसार असुरक्षित पेयजल (Unsafe Drinking Water) पीने के कारण प्रति वर्ष तीस लाख से अधिक लोगों की मृत्यु होती है।

वायु प्रदूषण (Air Pollution)

भारत में वायु प्रदूषण पर्यावरणीय समस्या का एक प्रमुख स्वरूप है। वायुमंडल में विद्यमान विभिन्न गैसों के प्राकृतिक अनुपात में असंतुलन वायु प्रदूषण को इंगित करता है। शहरों में मोटर गाड़ियों से निकले धुएँ में उपस्थित कार्बन डाईऑक्साइड, लेड, कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड आदि वायुमंडल में एकत्रित होते जा रहे हैं जिससे प्राण वायु आक्सीजन की वातावरण में कमी हो गई है। दिल्ली, कानपुर, आदि शहर मुख्य रूप से वायु प्रदूषण के शिकार रहे हैं। इसके अलावा झारखण्ड, पं. बंगाल, राजस्थान, ओडिशा, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों के औद्योगिक क्षेत्र (Industrial Area) वायु प्रदूषण की चपेट में हैं।

यहाँ लोहे, सीमेंट, रासायनिक खादों आदि के कारखानों में कोयले को ईंधन के रूप में प्रयोग से कार्बन मोनोआक्साईड पूरे वातावरण में विद्यमान है जिससे साँस लेना भी मुश्किल हो गया है। भारत के ग्रामीण समाज (Rural Society) में मिट्टी के बर्तनों को पकाने के लिए तथा घरों में भोजन बनाने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले पशुओं के सूखे गोबर के कारण निकला धुआँ भूरे बादल के रूप में वायुमंडल में मौजूद हो गया है जिसे एशियाई भूरा बादल की संज्ञा दी गई है। भारतीय समाज में वायु प्रदूषण का एक स्वरूप धूम्रपान के रूप में भी दिखाई दे रहा है जो कि धूम्रपान करने वाले को प्रदूषित तो करता ही है साथ ही साथ उनके पास उपस्थित अन्य लोग भी अप्रत्यक्ष धूम्रपान (Indirect Smoking) द्वारा SO_2 तथा CO जैसी प्रदूषक गैसों से प्रभावित होते हैं।

मृदा प्रदूषण (Soil Pollution)

भारत में पर्यावरणीय समस्या का अन्य स्वरूप मृदा प्रदूषण के रूप में मौजूद है।

पृथ्वी की 15 सेमी मोटी ऊपरी परत जिस पर कृषि कार्य किया जाता है, मृदा कहते हैं। इस मृदा में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, फास्फोरस, सिलिकॉन जैसे रासायनिक तत्त्वों के अलावा सूक्ष्म जीव एवं जन्तु पाए जाते हैं जो कृषि किए जाने वाले पौधों के लिए पोषण प्रदान करते हैं। भारत में हरित क्रांति के फलस्वरूप अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीव नष्ट हो गए हैं जिससे मृदा का उपजाऊपन (Fertility) खत्म होता जा रहा है। अत्यधिक सिंचाई के कारण (हरित क्रांति) तथा घरेलू अपमार्जकों के मृदा में जाने से मृदा की लवणता में वृद्धि होने से उपजाऊ मृदा अनुपजाऊ ऊसर के रूप में परिवर्तित हो रही है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radioactive Pollution)

रेडियोधर्मी प्रदूषण भारत में पर्यावरणीय समस्या का सर्वाधिक घातक स्वरूप है। रेडियो-धर्मी तत्त्व ऐसे तत्त्व होते हैं जिनसे रेडियो एक्टिव किरणें निकलती रहती हैं जो कि मानव स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव डालती हैं। भारत में रेडियोधर्मी प्रदूषण निम्न रूपों में मौजूद है:-

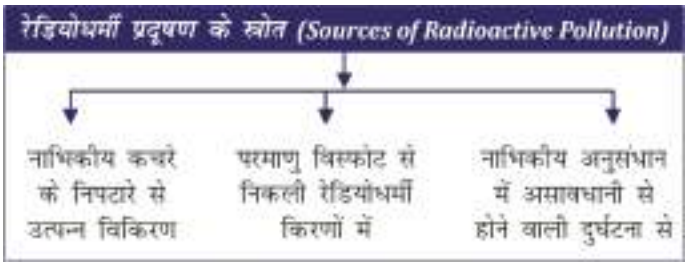

भारत ने अपनी परमाणु क्षमता के परीक्षण के लिए पोखरन में परमाणु विस्फोट किए जिससे रेडियो एक्टिव किरणें निकलीं जो कि काफी समय तक वहाँ मौजूद रहीं। इसके अलावा भारत में गुजरात के ओलंग क्षेत्र में अमेरिका एवं अन्य देशों से आयातित परमाणु कचरे का निपटारा किया जाता है जो कि उस क्षेत्र में नाभिकीय प्रदूषण के रूप में खतरा बना हुआ है। इसका विरोध भी समय-समय पर किया जाता रहा है। कभी-कभी भारतीय नाभिकीय अनुसंधान केन्द्रों पर असावधानी के कारण रेडियोधर्मी किरणों के विकिरण की खबरें सुनाई देती हैं।

वर्ष 2010 में दिल्ली में कचरे की दुकान में रेडियोधर्मी किरणों के विकिरण की स्थिति उत्पन्न हुई थी।

ध्वनि प्रदूषण (Noise Pollution)

भारतीय समाज में पर्यावरणीय समस्याओं का एक अन्य स्वरूप ध्वनि प्रदूषण के रूप में भी मौजूद है। जब ध्वनि की तीव्रता एक निश्चित इकाई से आगे बढ़ जाती है तो वह ध्वनि प्रदूषण कहलाता है। ध्वनि की तीव्रता डेसीबल में मापी जाती है। भारत में प्रायः धार्मिक जुलूसों, त्योहारों आदि के समय ध्वनि विस्तारक (Loud Speakers) यंत्रों का प्रयोग किया जाता है जो कि पास-पड़ोस के लोगों को प्रभावित करते हैं, इसके अलावा महानगरों में मोटर गाड़ियों से भी ध्वनि प्रदूषण होता है। शहरों के चौराहों पर कभी-कभी ध्वनि की तीव्रता अत्यधिक हो जाती है। इसके अलावा डिस्कोथेक, संगीत केन्द्रों में अत्यधिक आवृत्ति की ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं जोकि वहाँ उपस्थित लोगों को दुष्प्रभावित करती है। रॉकेटों, वायुयानों से उत्पन्न अत्यधिक डेसीबल की ध्वनियाँ ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न करती हैं।

पर्यावरण पर पड़ रहे इन दुष्प्रभावों (Side Effects) के प्रति मानव काफी देर से जागरुक हुआ तथा इसके लिए संगठित प्रयास 20वी सदी के उत्तरार्द्ध में ही शुरू हो पाए। यह महसूस किया गया कि पर्यावरणीय संसाधन अनंत नहीं हैं। पर्यावरण एक सीमा तक ही संसाधनों का पुनर्चक्रण कर सकती है। अतः 1987 में वर्ल्ड कमीशन ऑन इनवायरमेंट (ब्रंटलैंड आयोग) ने सतत् विकास की अवधारणा रखी। इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, संगठनों, मानकों, नियमों द्वारा इसका सार्वजनीकरण करके इसे विश्व स्तर पर प्रसारित करने का प्रयास किया गया।

भारत सरकार ने भी पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त करते हुए कई कार्य किए हैं। भारत ने प्रदूषण तथा पर्यावरण क्षरण (Environmental Degradation) रोकने के लिए कई नियम तथा नीतियाँ बनायी हैं। जैसे केन्द्रीय वन नीति, वायु प्रदूषण अधिनियम, 1981 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 आदि। भारत में भी विकास के लिए धारणीय विकास की अवधारणा को अपनाया गया है ताकि विकास यात्रा में पर्यावरण को कम से कम नुकसान पहुँचे।

पर्यावरणीय जागरुकता का विकास पर प्रभाव
(Effect of Environmental Awareness on Development)

राष्ट्रीय पर्यावरण जागरुकता अभियान के माध्यम से भारत सरकार पर्यावरण के मुद्दों के बारे में जागरुकता पैदा करने के कार्यक्रम शुरू करने के लिए गैरसरकारी संगठनों और संस्थाओं को प्रोत्साहित करती है।

इन सभी प्रयासों तथा सूचना क्रांति (Information Revolution) के सहयोग से जन साधारण तक पर्यावरण जागरुकता बढ़ाने में सहायता मिली है तथा लोग अब अपने आस-पास के पर्यावरण के प्रति सचेत हो रहे हैं।

उपरोक्त प्रयासों से पर्यावरण के अतिशय दोहन पर अंकुश लगा है। कई जगहों पर पर्यावरण को बचाने में ये प्रयास कामयाब हुए हैं तथा जन आंदोलनों तथा न्यायपालिका की मदद से पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले कार्यों पर रोक लगाई जा सकी है। इसी प्रकार का एक उदाहरण पॉलीथीन बैग्स पर रोक है। सख्त सरकारी नियमों के कारण ही जंगल तथा जंगलों में बसी जैव-विविधता (Bio-diversity) अभी तक संरक्षण पा रही है तथा अवैध वनोन्मूलन और शिकार पर भी अंकुश लग पाया है।

हालांकि ये नियम या प्रयास निश्चित रूप से पर्यावरण संरक्षण कर रहे हैं लेकिन भारत जैसे विकासशील देश में ज्यादा सख्त नियम तथा आन्दोलन इसके विकास के मार्ग में बाधा बनकर भी सामने आ रहे हैं। इसे समझने के लिए चर्चित वेदांता एल्युमीनियम लिमिटेड के प्रकरण को देख सकते हैं।

वेदांता ने 2003 में 'उड़ीसा माइनिंग कॉरपोरेशन' के साथ ज्वाइंट वेंचर में लांजीगढ, कालाहांडी (ओडिशा) में एक एल्युमीनियम रिफाइनरी की स्थापना की। इस रिफाइनरी के लिए बॉक्साइड का खनन पास के नियमगिरि पहाड़ी से होना था जिसका वायदा ओडिशा सरकार द्वारा कम्पनी को किया गया था। पहले चरण की पर्यावरण अनुमति के बाद वेदांता द्वारा भारी निवेश करके इस रिफाइनरी की स्थापना की गयी, जिसकी क्षमता एक मिलियन टन प्रतिवर्ष है। इसे बढ़ाकर छः मिलियन टन प्रतिवर्ष की क्षमता पर लाने की योजना वेदांता की है। परन्तु दूसरे चरण की पर्यावरणीय अनुमति केन्द्र सरकार से नहीं मिल पाई तथा खनन (Mining) के लिए आवश्यक भूमि वेदांता को नहीं मिल पायी, बॉक्साइड की कमी के कारण इस रिफाइनरी को कुछ महीने बंद भी रखना पड़ा और अभी भी यह रिफाइनरी अपनी

स्थापित क्षमता के 60% पर ही चल पा रही है। इसे अपनी रिफाइनरी के लिए बॉक्साइड दूसरे राज्यों से माँगना पड़ रहा है जबकि ओडिशा बॉक्साइड खनिज के मामले में धनी राज्य है।

वेदांता की इस परियोजना का विरोध नियमगिरि के मूल निवासियों, पर्यावरणविदों तथा केन्द्र सरकार ने भी किया है। मूल निवासी डोंगरिया, कोंध तथा कुटिया कोंध का कहना है कि उनकी आजीविका के स्रोत पवित्र जंगल हैं जिन्हें वे पूजते हैं, खनन कार्य के कारण नष्ट हो जाएंगे। पर्यावरणविदों का कहना है कि यहाँ परियोजना पूर्व पर्यावरण प्रभाव आंकलन (Environmental Impact Assessment) सही से नहीं किया गया है। खनन कार्य के कारण जंगल कटने से वर्षा की मात्रा में कमी आएगी और खनन के कारण भूमिगत जल स्रोत भी या तो समाप्त हो जाएंगे या दूषित हो जाएंगे जिससे यहाँ की दो बड़ी नदियों तथा कई अन्य छोटी-छोटी धाराओं के प्रवाह पर असर पड़ेगा तथा ये सूख भी सकती हैं। केन्द्र सरकार ने भी पर्यावरण संबंधी नियमों का सही से पालन नहीं करने को ही आधार बनाकर दूसरे चरण की मंजूरी को रोक दिया है।

इसी प्रकार की समस्या का सामना दक्षिण कोरिया की स्टील कंपनी पोस्को को भी अपनी परियोजना के लिए जमीन अधिग्रहण में करना पड़ा आर्सेलर मित्तल ने तो 50,000 करोड़ के स्टील संयंत्र की स्थापना की योजना को ही रद्द कर दिया।

दिल्ली में न्यायालय के आदेश से सैकड़ों प्रदूषणकारी उद्योगों को बंद करवाया गया। लोगों को प्रदूषण से कुछ राहत तो अवश्य मिली परन्तु साथ ही निम्नवर्गीय मजदूरों के रोजगार भी छिन गए। के. कस्तूरीरंगन ने पश्चिमी घाट में पर्यावरणीय दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्र घोषित करने की अनुसंशा की है जिसमें ऐसी कोई भी गतिविधियाँ संचालित नहीं की जा सकेंगी जो प्रदूषण, वन विनाश तथा जैव-विविधता के लिए खतरे का कारण बनें। इससे पर्यावरण मित्र काफी खुश हुए परन्तु साथ ही यह भी ध्यान देना होगा कि इन क्षेत्रों में विकास की कोई भी गतिविधि नहीं चलाई जा सकेगी।

भारत को अपने विकास की दर बनाए रखने के लिए भारी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता है और भविष्य में इस मांग का और भी बढ़ना तय है। इसके लिए भारत को जल विद्युत तथा नाभिकीय विद्युत की ओर कदम बढ़ाना है परन्तु आजकल सभी बड़ी पनबिजली योजना का विरोध हो रहा है। एक भी नई बड़ी योजना नहीं बन पायी है। नाभिकीय ऊर्जा के लिए कुडनकुलम में स्थापित नाभिकीय संयंत्र को भी पार्यावरण संरक्षण (Environment Protection) के नाम पर भारी विरोध झेलना पड़ा जबकि नाभिकीय ऊर्जा एक स्वच्छ ऊर्जा स्रोत है।

इसी तरह भारत के पश्चिमी तट तथा पूर्वी तट के बीच संपर्क तीव्र करने तथा यात्रा समय और ईंधन खपत घटाने के लिए जब 'सेतुसमुद्रम' परियोजना की संकल्पना लायी गयी तो समुद्री पर्यावरण के नष्ट होने तथा जैव-विविधता पर बुरा असर पड़ने की बात पर्यावरण के हितैषियों ने रखी।

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हैं जहाँ पर्यावरण तथा विकास के बीच टकराव देखने को मिल जाता है। कई विकास परियोजनाएँ इसी टकराव के कारण अधर में लटकी हैं। यह सिर्फ भारत में नहीं हो रहा है, यह समस्या विश्व के सभी विकासशील देशों में मौजूद है। यही नहीं विश्व के विकसित देशों को भी अपने विकास के क्रम में इस समस्या को झेलना पड़ा था।

पोस्को

भारत की सबसे बड़ी विदेशी निवेश परियोजना के रूप में जानी जाने वाली परियोजना है। इसमें कैप्टीव लौह अयस्क खान, इस्पात संयंत्र और एक निजी बन्दरगाह शामिल है।

22 जून, 2005

ओडिशा सरकार तथा पोस्को-इंडिया, दक्षिण कोरिया की पोस्को कॉरपोरेशन की सहायक, के बीच एक समझौता हुआ। समझौता एक एकीकृत लौह-अयस्क खान-स्टील संयंत्र एवं एक निजी बंदरगाह के लिए हुआ।

समझौते के अन्दर 4004 एकड़ की जमीन स्टील प्लांट (जगतसिंहपुर जिला) के लिए आवंटित की गयी है। इसमें से 1,253 हेक्टेयर (लगभग 3000 एकड़) वन भूमि आधिकारिक रूप से वन भूमि है। हालांकि यह वन भूमि अधिकांशत: जोत भूमि में बदल चुकी है जिस पर पान, काजू तथा अन्य नकदी फसलों की खेती होती है और कुछ लोग मत्स्यपालन भी करते हैं। इनमें से कुछ परिवार सदियों से तो कुछ दशकों से यहाँ रह रहे हैं। इस क्षेत्र में वनोरोपण (Forestation) की माँग के कारण इसे वन भूमि घोषित कर दिया गया था।

यहाँ वास्तविक मुख्य वन मैंग्रोव है जो काफी कम है। स्वामित्व अभिलेख के अभाव में जो 4,000 परिवार भौतिक रूप से विस्थापित होंगे उनमें सिर्फ 270 ही अधिकारिक रूप से क्षतिपूर्ति पाने के अधिकारी होंगे।

अगस्त / सितम्बर, 2005

पोस्को प्रतिरोध संग्राम समिति का गठन पोस्को परियोजना के विरोध के लिए हुआ।

उपरोक्त टकराव के कारण पोस्को को 12 मिलियन टन प्रतिवर्ष के संयंत्र की स्थापना के लिए अनुमति लेने में लगभग 9 साल का समय लग गया।

वेदांता

- ***2003–*** स्टरलाइट, जो अब वेदान्ता एल्युमीनियम लिमिटेड कहलाती है, ने नियमगिरी पहाड़ी में बॉक्साइट के खनन के लिए उड़ीसा खनन निगम (Odisa Mining Corporation) के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किया।
- ***2007–*** नियमगिरि से बाक्साइट मिलने की आशा से वेदान्त एल्युमीनियम लिमिटेड ने लानजीगढ़ में 1 मिलियन टन की क्षमता वाली एल्युमीनियम रिफाइनरी की शुरूआत की।
- ***जुलाई, 2010–*** केन्द्रीय पर्यावरण मंत्रालय तथा उड़ीसा के मुख्य सचिव ने अलग-अलग जाँच के आदेश दिए कि क्या खनन से नियमगिरि में रह रहे डोंगरिया आदिवासियों के अधिकारों का अतिक्रमण होगा?
- ***16 अगस्त, 2010–*** केन्द्र के द्वारा स्थापित 4 सदस्यीय दल ने पाया कि वेदान्ता एल्युमीनियम लिमिटेड (वीएएल) ने राज्य के अधिकारियों के साथ मिलकर वन तथा पर्यावरण कानूनों का उल्लंघन किया है।

- ***अगस्त, 2010–*** केन्द्रीय पर्यावरण मंत्रालय ने इस ज्वाइंट वेंचर को पहले दिए गए अनापत्ति को रद्द कर दिया।
- ***18 अप्रैल, 2013–*** उच्चतम न्यायालय ने जंगल वासियों का दृष्टिकोण जानने के लिए उस क्षेत्र के 12 ग्राम सभाओं के आयोजन का आदेश दिया।
- ***15 जुलाई, 2013–*** वेदांता रिफाइनरी जो दिसंबर, 2012 से बॉक्साइट की कमी के कारण बंद थी उसे फिर से दूसरे राज्यों से बॉक्साइट मंगाकर चालू किया गया।
- ***18 जुलाई, 2013–*** सरकापाड़ी गाँव (जिला रायगढ़) में आयोजित पहली ग्राम सभा ने खनन प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया।
- ***19 अगस्त, 2013–*** पहले की सभी ग्राम सभाओं की तरह जरपा गाँव में आयोजित 12वीं ग्राम सभा ने भी इस खनन प्रस्ताव को खारिज कर दिया।

कुछ का मानना है कि पहले विकास होना चाहिए तभी हम पर्यावरण पर ध्यान दे पाएंगे तथा उसकी रक्षा कर सकेंगे तो वहीं दूसरों का मानना है कि यदि पर्यावरण समाप्त हो जाएगा तो मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा अर्थात् ऐसे विकास का कोई फायदा नहीं है जो मानव के अस्तित्व को ही मिटा दे।

कुछ विचारकों का यह भी मानना है कि पर्यावरण पर जोर विकसित देशों की सोची समझी रणनीति है ताकि विकासशील देश उनकी बराबरी नहीं कर सकें और वे अपनी पर्यावरण अनुकूल तकनीक को मंहगे उत्पाद की तरह बेच सकें, वह भी तब जब सबसे ज्यादा प्रदूषण विकसित देशों ने ही अपने विकास के क्रम में फैलाया है। आज भी विकसित देशों का कार्बन फुटप्रिंट विकासशील देशों से ज्यादा है।

पर्यावरण तथा विकास का द्वंद्व (Conflict of Development) हमेशा चलता रहता है। कुछ लोगों को पर्यावरण ज्यादा महत्त्वपूर्ण लगता है तो कुछ को विकास। यह ध्यान देने योग्य है कि हम न तो विकास में पिछड़ना चाहते हैं और ना ही पर्यावरण को नष्ट करके विकास प्राप्त करना चाहते हैं। हमें विकास की वह प्रक्रिया अपनानी होगी जहाँ विकास तथा पर्यावरण एक-दूसरे के विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक (Supplementary) का कार्य करें अर्थात् एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना आवश्यक है जिसमें पर्यावरण तथा विकास संतुलित रूप से साथ-साथ विद्यमान रहे। ऐसी ही संकल्पना सतत् धारणीय विकास की है, जिसमें विकास के लिए उन माध्यमों को अपनाया जाता है जिससे पर्यावरण को कम से कम क्षति पहुँचे। यह अवधारणा है तो काफी अच्छी पर एक विकासशील देश में जहाँ तकनीकी विकास कम है, जनसंख्या अत्यधिक है, गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या जड़ें जमाए है और आंतरिक तथा बाह्य सुरक्षा पर खतरा मंडरा रहा है, इसे लागू कर पाना काफी मुश्किल हो जाता है। भ्रष्टाचार की मौजूदगी में यह समस्या और भी दुष्कर हो जाती है। भ्रष्टाचार के कारण कई परियोजनाएँ सही होने पर भी अटका दी जाती हैं जबकि कई ऐसी परियोजनाएँ, जो पर्यावरणीय दृष्टि से हानिकर होती हैं, पास कर दी जाती हैं।

भारत को अपनी गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी जैसी समस्याओं के लिए विकास की अत्यंत आवश्यकता है तो पर्यावरणीय मुद्दों को सुलझाने की आवश्यकता भी है।

भारत में पर्यावरण संरक्षण के लिए सुझाव (Suggestions for Environmental Protection in India)

पर्यावरण तथा विकास में संतुलन स्थापित करके ही सही मायने में विकास किया जा सकता है। इनमें संतुलन स्थापित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं:–

1. ***तकनीकी विकास तथा हस्तांतरण (Technological Development and Transfer) –*** विकास के लिए स्वच्छ तकनीकों की खोज तथा उसके उपयोग पर विशेष बल देना चाहिए, जिससे पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को कम से कम किया जा सके। इन स्वच्छ तकनीकों के विकास के साथ-साथ इन तकनीकों का हस्तांतरण (Transfer of Technologies) भी तीव्र गति से व मुफ्त या बहुत कम कीमत पर होना चाहिए क्योंकि प्रदूषण से सिर्फ प्रदूषणकारी ही प्रभावित नहीं होता बल्कि अन्य भी प्रभावित होते हैं। अत: इस प्रकार के प्रावधान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लागू होने चाहिए और इसके लिए सभी राष्ट्रों को मिलकर प्रयत्न करने चाहिए।
2. ***पर्यावरण प्रभाव आकलन (Environment Impact Assessment) –*** यह किसी मानवीय गतिविधि का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की पहचान, माप, उसके महत्त्व की व्याख्या, मूल्यांकन करना तथा इन परिणामों के आधार पर प्रतिकूल प्रभावों (Adverse Effect) को समाप्त या न्यूनतम करने के लिए उपाय करना और इसके लिए निगरानी व्यवस्था करने की प्रक्रिया है।

सभी परियोजनाओं का पर्यावरण प्रभाव आकलन सही तरीके से किया जाना चाहिए जिससे बाद में इस पर कोई विवाद न हो।

3. ***कार्बन ट्रेडिंग जैसी संकल्पनाओं को बढ़ावा (Promote to Concept like Carbon Trading)*** – कार्बन ट्रेडिंग जैसी संकल्पनाएँ पर्यावरण संरक्षण तथा इसके लिए पर्यावरण हितैषी तकनीकों (Environment Friendly Technologies) के प्रयोग को प्रोत्साहित करती हैं क्योंकि इसमें पर्यावरण की रक्षा में योगदान देने के लिए योगदानकर्त्ता को आर्थिक लाभ मिलता है।

4. ***कर छूट (Tax Rebate)*** – पर्यावरण हितैषी तकनीकों के प्रयोग तथा उसके आविष्कार के लिए सरकार की तरफ से कर में छूट या सहायिकी प्रदान की जानी चाहिए।

5. ***सार्वजनिक परिवहन (Public Transportation)*** – सार्वजनिक परिवहन का उपयोग करके विकास तथा पर्यावरण में संतुलन लाया जा सकता है। यदि सार्वजनिक परिवहन प्रणाली को स्वच्छ ईंधन पर चलाया जाये तथा इसकी कीमत कम रखी जाए तो पर्यावरण को हानि पहुँचाए बिना विकास के लिए जरूरी गतिशीलता को बनाए रखा जा सकता है।

6. ***स्थानीय लोगों की राय तथा लाभ में साझेदारी (Local People's Opinion and Share in benifits)*** – किसी परियोजना में स्थानीय लोगों की राय को शामिल कर तथा परियोजना के लाभ में उन्हें हिस्सा देकर और पर्यावरण पर प्रभाव (Effect on Environment) के बारे में उन्हें सही जानकारी प्रदान करके विकास कार्य के विरोध को कम किया जा सकता है। स्थानीय लोगों की राय से इसे पर्यावरण के अनुकूल भी बनाया जा सकता है।

7. ***सरकार की तरफ से सही जानकारी (Correct information from the Government)*** – सरकार को भी किसी परियोजना से पहले कम्पनी तथा स्थानीय जनता दोनों को सही जानकारी देनी चाहिए। सरकार को अपनी ओर से झूठे वायदे नहीं करने चाहिए जैसा कि वेदांता मामले में राज्य सरकार ने एल्युमीनियम के लिए बॉक्साइड की आपूर्ति का वायदा किया लेकिन उसे पूरा नहीं कर पायी। इसी प्रकार केन्द्र सरकार को पहले चरण की मंजूरी से पहले ही अन्वेषण कर लेना चाहिए था।

8. ***पर्यावरण की आड़ में राजनीति न हो (There Should be no Politics under the guise of Environment)*** – कई बार पर्यावरण का सहारा लेकर मुद्दों पर राजनीति की जाती है तथा जानबूझकर विकास कार्य में रोड़े अटकाए जाते हैं। इससे सभी दलों तथा नेतृत्व को बचना चाहिए। उन्हें अपने लाभ के लिए पर्यावरण का सहारा नहीं लेना चाहिए।

पर्यावरण संरक्षण में रेलवे की पहल (Railway's Initiative in the Environmental Protection)

पर्यावरण संरक्षण में भारतीय रेल की भूमिका की व्यापक रूप से सराहना की गयी है। रेल परिवहन में ऊर्जा की किफायत के अलावा नवीकरण योग्य ऊर्जा का इस्तेमाल और स्वच्छ ऊर्जा परियोजनाओं को बढ़ावा देना रेलवे की प्राथमिकता है। रेलवे ऊर्जा प्रबंधन कंपनी ने कार्य शुरू कर दिया है और वह पन-चक्की, सौर ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना की दिशा में कार्य कर रही है, जिसमें नवीन और नवीकरणीय (Renewable) ऊर्जा मंत्रालय से लगभग 40% सब्सिडी प्राप्त हुई है। शुरूआत में 200 रेलवे स्टेशनों, 26 इमारतों की छतों और 2,000 समपार फाटकों को इसमें शामिल किया गया।

स्टेशनों के पहुँच मार्ग के निकट रेल-पथ के आस-पास सौंदर्यपूर्ण परिवेश बनाने के उद्देश्य से आगरा और जयपुर स्टेशनों पर पायलट आधार पर 'ग्रीन कर्टेन' का निर्माण किया जा रहा है। इसमें एक उपयुक्त दूरी तक रेलवे बाउंडरी के साथ-साथ समुचित ऊँचाई की आर.सी.सी. बाउंडरी वाल का निर्माण, रेलपथ से चारदीवारी और स्टेशन के परिचालन क्षेत्र में लैंडस्केपिंग और खुले में मलत्याग और कूड़ा-करकट फैलाने पर नियंत्रण रखने के लिए समुचित निगरानी की व्यवस्था शामिल है। इस पायलट परियोजना के सफल होने पर रेलवे नगरपालिकाओं और स्थानीय निकायों का समर्थन प्राप्त करने के अलावा कॉरपोरेट सामाजिक जिम्मेदारी सम्बन्धी उपायों के जरिए कम्पनियों को इस कार्यक्रम में भाग लेने के लिए आमंत्रित करने के इच्छुक हैं।

सवारी डिब्बों के भीतर और रेलवे लाइनों पर साफ-सफाई की ओर विशेष ध्यान देने के लिए रेलवे द्वारा बायो-टॉयलेट डिजाइन अपनाया गया है और यह टेक्नोलॉजी लगभग 2,500 सवारी डिब्बों में शुरू की गयी है। इस टेक्नोलॉजी का उतरोत्तर विस्तार करने का प्रस्ताव है।

राष्ट्रीय पर्यावरण नीति-2006 के उद्देश्य (Objectives of National Environmental Policy-2006)

इस नीति के मुख्य उद्देश्यों का विवरण नीचे दिया गया है। ये उद्देश्य प्रमुख पर्यावरणीय चुनौतियों की वर्तमान अवधारणाओं से सम्बन्धित हैं। तदनुसार ये समय के साथ क्रमिक रूप से निर्धारित किए जा सकते हैं:-

1. ***महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय संसाधनों का संरक्षण (Conservation of Important Environmental Resources)*** – उन महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिकीय प्रणालियों, संसाधनों तथा प्राकृतिक व मानव निर्मित मूल्यवान धरोहरों की सुरक्षा तथा संरक्षण करना, जो जीवन रक्षक आजीविका/आर्थिक तथा मानव कल्याण की व्यापक संकल्पना के लिए अनिवार्य हैं।
2. ***गरीबों के लिए आजीविका सुरक्षा (Livelihood Security for the Poor)*** – समाज के सभी तबकों के लिए पर्यावरणीय संसाधनों तक पहुँच तथा गुणवत्ता की समानता सुनिश्चित करना तथा विशेष तौर पर यह सुनिश्चित करना कि निर्धन समुदाय जो आजीविका के लिए सर्वाधिक रूप से पर्यावरणीय संसाधनों पर निर्भर हैं, उन्हें ये संसाधन अवश्य मिलें।
3. ***पीढ़ियों में समता (Equity Across Generations)*** – वर्तमान और भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए पर्यावरणीय संसाधनों का न्यायोचित प्रयोग सुनिश्चित करना।

4. ***आर्थिक तथा सामाजिक विकास में पर्यावरणीय सरोकारों का एकीकरण (Integration of Environmental Concerns into Economic and Social Development)*** – आर्थिक तथा सामाजिक विकास के उद्देश्य से पर्यावरणीय सरोकारों को योजनाओं, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं के रूप में एकीकृत करना।
5. ***पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग में दक्षता (Efficiency in use of Environmental Resources)*** – प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभावों के न्यूनीकरण के लिए आर्थिक उत्पादन की प्रति इकाई में प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग में कमी करके उनका सही प्रयोग सुनिश्चित करना।
6. ***पर्यावरणीय संचालन (Environmental of Operations)*** – पर्यावरणीय संसाधनों के प्रयोग के प्रबंधन तथा विनियमन के संबंध में बेहतर संचालन (पारदर्शिता, न्यायोचितता, जवाबदेही, समय तथा लागतों में कमी, सहभागिता तथा नियंत्रण की स्वतंत्रता) के सिद्धांत को लागू करना।
7. ***पर्यावरण संरक्षण के लिए संसाधनों में बढ़ोत्तरी (Increase in Resources for Environmental Protection)*** – स्थानीय समुदायों, सार्वजनिक एजेंसियों, शैक्षणिक और अनुसंधान समुदाय, निवेशकों और बहुपक्षीय और द्वि-पक्षीय विकास पार्टनरों के मध्य परस्पर लाभकारी बहु हितधारक सहभागिताओं के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण हेतु वित्त, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन कौशल, पारंपरिक ज्ञान तथा सामाजिक पूंजी आदि को शामिल करते हुए अधिक संसाधन प्राप्ति सुनिश्चित करना।

उपरोक्त कुछ उपायों से पर्यावरण व विकास में टकराव से बचा जा सकता है।

मानव को विकास की उस स्थिति तक जाना होगा जहाँ पर्यावरण को क्षति पहुँचाए बिना वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर सके। यदि क्षति हो भी तो सिर्फ इतनी जिसे प्रकृति आसानी से पूर्ति कर ले।

विकास एवं विस्थापन (Development and displacement)

विकास और विस्थापन दो विरोधाभाषी शब्द लग सकते हैं लेकिन यह हमारे राष्ट्रीय जीवन के तथ्य हैं और हमारी किसी भी कल्पना से अधिक आश्चर्यजनक रहे हैं। भारत में पिछले 50 सालों में 5 करोड़ से भी ज्यादा लोग विस्थापित हुए हैं। इनके घरों, झोपड़ियों, खेतों, जंगलों, नदी, तालाबों, कुँओं, चारागाहों आदि की राष्ट्रीय हित की वेदी पर बलि ले ली गयी। ये लाखों लोग अपने जीवन, आजीविका जीवन शैली के विनाश के गवाह स्वयं हैं। फिर भी नीति नियोजकों, राजनेताओं और सरकारों के लिए, इन वर्षों में, यह कोई मुद्दा नहीं रहा है इससे स्पष्ट है कि विभिन्न विकास परियोजनाओं जैसे पनबिजली, सिंचाई परियोजना, खान (विशेषकर खुली खदान), वृहद ताप तथा आण्विक बिजली परियोजना, औद्योगिक परिसरों आदि के परिणाम के रूप में विस्थापित हुए लोगों के बारे में सरकार के पास कोई वास्तविक आंकड़े नहीं हैं।

विकास परियोजनाओं (Development Projects) में अक्सर उस जमीन का नियंत्रण विकासकर्त्ता (डेवलपर) के हाथों में चला जाता है, जो पहले किसी दूसरे के हाथों में था। प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण, शहरी नवीकरण या विकास कार्यक्रम, औद्योगिक पार्क और बुनियादी ढाँचा (जैसे-राजमार्ग, पुल, सिंचाई, नहर, बांध) परियोजनाओं में अक्सर बड़ी मात्रा में भूमि की आवश्यकता होती है। व्यक्तियों तथा समुदायों का विस्थापन या उथल-पुथल इसका एक आम परिणाम है। विस्थापन तथा पुनर्वास (Rehabilitation) पर लिखे गए लेखों में सिर्फ उन्हीं भौतिक विकास परियोजनाओं को विस्थापन का कारण माना जाता है, जिनमें भूमि जब्ती की आवश्यकता होती है, जबकि सिर्फ इसी प्रकार की परियोजनाएँ विस्थापन का कारण नहीं हैं, संरक्षण परियोजनाएँ (Conservation Projects) जैसे वन्य जीवन की पुनः शुरूआत, खेल पार्क तथा जैव-विविधता क्षेत्र आदि का निर्माण भी अक्सर विस्थापन का कारण बनते हैं। हालांकि और भी तरह के विस्थापन होते हैं, जैसे काम की तलाश हेतु प्रवास आदि। परन्तु हमारी चर्चा का विषय यहाँ आज्ञप्ति/आदेश द्वारा भौतिक विस्थापन से है।

विस्थापन के कारणों में विकास परियोजनाओं के कई प्रकार हैं। सुविधा के लिए हम इन्हें तीन प्रकारों में बांट सकते हैं। ये हैं-बांध, शहरी नवीकरण और विकास तथा प्राकृतिक संसाधनों का निष्कर्षण।

विकासजनित विस्थापन का स्वरूप (Nature of developmental displacement)

बांध से विस्थापन (Displacement from Dam)

अन्य विकास परियोजनाओं की तरह बांध से विस्थापित हुए लोगों की संख्या पर भी काफी विवाद है।

हीराकुंड बांध से विस्थापित लोगों की संख्या आधिकारिक रूप से एक लाख बताई गयी परन्तु शोधकर्ताओं ने आंकड़े 1.80 लाख बताए हैं। फरक्का सुपर थर्मल पावर प्लांट से प्रभावितों की संख्या अधिकारिक रूप से शून्य बतायी गयी, लेकिन विश्व बैंक ने 63,325 का आंकड़ा प्रदर्शित किया है।

भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा बांध निर्माता देश है। जहाँ 3600 बड़े बांध हैं तथा 700 बांध निर्माण प्रक्रिया में हैं।

यह भी स्पष्ट है कि परियोजना अधिकारी विस्थापन और पुनर्वास की समस्या का परियोजना (Problem of Displacement and Rehabilitation) के महत्त्वपूर्ण भागों के रूप में विचार नहीं करते हैं। उनकी प्राथमिकता इंजीनियरिंग, बिजली तथा सिंचाई के लाभों को देखना तथा उन पर विचार करना होता है। वे जनसंख्या के विस्तृत तथा व्यवस्थित सर्वेक्षण पर कम ही ध्यान देते हैं। इससे वास्तविक प्रभावितों का पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

अच्छी तरह से ज्ञात है कि परियोजना अधिकारी अक्सर उससे कम विस्थापन आँकड़े दिखाते हैं, जितना कि वास्तविकता

में हो सकता है ताकि अनुकूल लागत (Favorable Cost) लाभ दिखाकर परियोजना के लिए मंजूरी ली जा सके।

विश्व बैंक द्वारा विस्थापन और पुनर्वास के स्थिति की समीक्षा से पता चला है कि 192 परियोजनाओं में लगभग 6 करोड़ लोगों को परियोजना नियोजन में गिना ही नहीं गया। एक उदाहरण में परियोजना से विस्थापित वास्तविक लोगों की संख्या परियोजना दस्तावेज में अंकित संख्या का 7 गुना थी।

1979 में सरदार सरोवर जलाशय से विस्थापित होने वाले परिवारों की संख्या 6000 से थोड़ा ऊपर होने का अनुमान किया गया था। 1987 में यह बढ़कर 12000 हो गयी। 1991 में यह 27,000 हो गयी। 1992 में सरकार ने प्रभावित परिवार 40,000 होने की घोषणा की, आज यह 40,000 से 41,500 के बीच घूम रही है। परन्तु नर्मदा बचाओं आन्दोलन के अनुसार वास्तविक संख्या 85,000 है।

जबलपुर के पास नर्मदा पर पूरा होने वाला यह पहला बांध था। 1990 के बजट में तय राशि का दस गुणा खर्च आया तथा तय भूमि से 3 गुना ज्यादा भूमि डूब गयी। जब जलाशय में पानी भरा गया तो अनुमानित 101 गाँव की जगह 162 गांव डूब गए।

शहरी नवीकरण और विकास से उत्पन्न विस्थापन (Displacement Resulting from Urban Renewal and Development)

शहरी बुनियादी ढाँचे और परिवहन परियोजनाएँ जो विस्थापन का कारण बनती है उनमें झुग्गी झोपड़ी सफाई तथा उन्नयन, सीवरेज सिस्टम निर्माण तथा उन्नयन, स्कूल, हॉस्पिटल, बंदरगाह तथा संचार और यातायात नेटवर्क का निर्माण शामिल है, जो विभिन्न शहरी केन्द्रों को जोड़ती हैं। इसके अलावा औद्योगिक और वाणिज्यिक संपदा की स्थापना से भी विस्थापन हो सकता है।

विश्व बैंक पर्यावरण विभाग के अनुमान के अनुसार विकास जनित विस्थापन का 60% (लगभग 60 लाख), प्रत्येक वर्ष, शहरी अवसंरचना और परिवहन परियोजना का परिणाम होता है।

1980 में जहाँ विश्व की जनसंख्या का 15.8% (लगभग 40 लाख) निवासी शहरों में निवास करते थे वहीं जनसांख्यिक 2025 तक इसके 24.5% तक हो जाने का अनुमान करते हैं। यह अनुमान विकासशील देशों के लिए 28.2% है। ग्रामीण विकास परियोजनाओं (Rural Development Projects) ने भी इसके बढ़ने में अपना योगदान दिया है क्योंकि विस्थापितों में से ज्यादातर को शहरों में पुनर्वासित किया गया है या वे अपने खराब पुनर्वास स्थल से काम की तलाश में शहरों की ओर चले गए।

प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण से विस्थापन (Displacement form Extraction of Natural Resources)

इस श्रेणी के विस्थापन में मुख्यत: खनिज और तेल निष्कर्षण परियोजनाओं से होने वाले विस्थापन शामिल हैं। समानता के बावजूद वानिकी निकास परियोजनाओं (Forestry extraction projects) को अनुसंधानों में संरक्षण प्रेरित विस्थापन माना गया है। प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण से विस्थापितों के कोई प्रमाणिक आँकड़े (संचयी या वार्षिक) उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु विश्व बैंक परियोजनाओं के आंकड़ों के अनुसार इसके द्वारा विस्थापन बांध तथा शहरी नवीकरण परियोजनाओं के द्वारा विस्थापन से काफी कम है।

विकास जनित विस्थापन तथा पुनर्वास सम्बन्धी आंकड़ों में प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण से होने वाले विस्थापन के कम मामले के होने के मुख्यत: दो कारण हो सकते हैं। पहला, खनन तथा तेल परियोजनाएँ बड़ी अवसंरचनात्मक परियोजनाओं (Infrastructure Projects) के मुकाबले कम/सीमित संख्या में विस्थापन करते हैं।

दूसरा, निष्कर्षण परियोजनाओं से होने वाले विस्थापन अक्सर अप्रत्यक्ष होते हैं। उदाहरण के लिए एक तेल पाइपलाइन से रिसाव के कारण पीने का पानी दूषित हो सकता है तथा खेत बंजर हो सकते हैं, इससे वहां रहने वाले परिवार को अपना घर, जमीन छोड़कर एक सुरक्षित जगह जाना पड़ सकता है। इस प्रकार के विस्थापन अस्पष्ट होते हैं तथा शायद ही कभी इसके लिए पुनर्वास किया जाता है।

विस्थापन से उत्पन्न समस्याएँ (Problems Resulting from Displacement)

1. बहुत सारे विस्थापितों को बार-बार विस्थापन से गुजरना पड़ता है। इसका एक उदाहरण सिंगरौली में विस्थापित लोग हैं जिसमें से 2 लाख लोग वे हैं जो रिहन्द बांध से 1964 में विस्थापित हुए थे। भारत के प्रसिद्ध पर्यावरणविद् तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता स्मितु कोठारी कहते हैं कि हजारों लोग पुनर्वास के अभाव में जलाशय के किनारे बस गए। वे गर्मियों में जलाशय का जल सूखने से बाहर आई भूमि पर खेती करके जीवन-यापन करने लगे। वे बाद में ताप विद्युत संयंत्र, कोयला खान, रेलों, उद्योगों एवं शहरीकरण द्वारा फिर से बार-बार विस्थापित हुए क्योंकि उनकी अस्थाई बस्तियों को परिवहन तथा वनोरोपण के कारण फिर से बार-बार खाली कराया गया।
2. व्यक्ति जहाँ रहता है वहां उसका एक सामाजिक संबंधों का ताना-बाना बुना रहता है। एक गांव या शहर में जो लोग लम्बे समय से एक ही जगह रह रहे होते हैं वहां उनका आस पड़ोस के लोगों तथा वातावरण से एक मानसिक लगाव उत्पन्न हो जाता है और चाचा, भैया, दादा आदि जैसे मुंहबोले सम्बन्ध बन जाते हैं तथा एक पारिवारिक ढांचा सा तैयार हो जाता है।

नई जगह पर विस्थापित होने से व्यक्ति के ये सारे संबंध तथा लगाव को एक बड़ा झटका लगता है। इससे व्यक्ति

के व्यक्तित्व में विखराव आने लगता है। जब यह विखराव अधिक हो तो व्यक्ति अवसाद में जा सकता है तथा अवसाद के गहराने से व्यक्ति आत्महत्या कर सकता है।

3. व्यक्ति जहाँ होता है वहीं वह अपने जीवन-यापन तथा अन्य साधनों का विकास करता है, जैसे-व्यवसाय सम्पर्कों का निर्माण। जब व्यक्ति विस्थापित होता है तो उसके ये संपर्क, जो काफी मेहनत से लंबे समय में बने होते हैं, टूट जाते हैं तथा फिर से नए सिरे से मेहनत करनी पड़ती है।
4. विस्थापितों में जमीन से बेदखली (Eviction) (भूमिहीनता), बेरोजगारी, खाद्य असुरक्षा, आम / सामुदायिक संपत्तियों तक पहुँच में कमी, बेघरी आदि के कारण गरीबी आ जाती है। इससे ये अपने न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने में भी सक्षम नहीं हो पाते हैं।
5. विस्थापियों का पुनर्वासन अधिकांशत: सही तरीके से नहीं हो पाता है। पुनर्वास स्थल पर सार्वजनिक सुविधाओं का आभाव होता है, नागरिक तथा मानव अधिकारों का हनन होता है।
6. पुनर्वासित स्थलों पर कानून व्यवस्था की समस्या काफी ज्यादा आती है तथा अपराधों की संख्या बढ़ जाती है। इससे न सिर्फ विस्थापित प्रभावित होते हैं बल्कि जहाँ विस्थापन किया गया है वहां के लोग भी प्रभावित होते हैं। जनसंख्या बढ़ने से संसाधनों को हासिल करने की होड़ सी लग जाती है तथा कई बार पुनर्वासितों और स्थानीय लोगों के बीच संघर्ष भी होने लगते हैं।
7. ज्यादातर विस्थापित बेहतर माहौल तथा रोजगार के लिए शहर में चले जाते हैं। इससे शहरों में भी भीड़ बढ़ती है तथा झुग्गी झोपड़ियों जैसे अस्वास्थ्यकर (Unhealthy) एवं जन सुविधा रहित केन्द्रों का शहर में विस्तार होता चला जाता है।
8. विस्थापन के समय विस्थापित जनसंख्या की स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच भी सीमित हो जाती है। पुनर्वास स्थलों पर आधारभूत संरचना का विकास तुरंत नहीं हो पाता इस कारण स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास भी जल्दी नहीं होता। यह देखा गया है कि विस्थापन के समय विस्थापित जनसंख्या में रुग्णता तथा मृत्युदर बढ़ जाती है।
9. विस्थापन की समस्या तथा इसका विरोध होने के कारण कई परियोजनाएँ बीच में ही अटक जाती हैं। इससे कई परियोजनाओं का खर्च अनुमान से कई गुणा ज्यादा हो जाता है।

इस तथ्य के बावजूद कि विकास परियोजनाओं द्वारा विस्थापित लोगों की संख्या भारत के विभाजन से विस्थापित लोगों की संख्या का तीन गुना है, यह हमारी राष्ट्रीय चेतना में प्रवेश नहीं कर पाया है। इस कठोर रवैया का कारण, विद्वानों के अनुसार यह है कि विस्थापितों में ज्यादातर संपत्तिविहीन (Propertyless) ग्रामीण गरीब हैं जैसे भूमिहीन श्रमिक तथा छोटे सीमांत कृषक/ जनजातियाँ जो भारत की जनसंख्या का लगभग 8.08% हैं वे विस्थापितों में लगभग 55% हैं। दलित विस्थापितों में 20% हैं तथा अन्य विस्थापितों में ग्रामीण गरीब हैं। यह स्पष्ट है कि ज्यादातर शक्तिहीन तथा मूक लोगों को विस्थापित किया गया तथा राष्ट्रीय विकास का मूल्य चुकाने के लिए बाध्य किया गया।

भूमि अधिग्रहण तथा पुनर्वास और पुनर्स्थापन से सम्बन्धित विभिन्न मुद्दों का समाधान करने के लिए भूमि संसाधन विभाग ने एक राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति, 2007 तैयार की। नई नीति को राजपत्र में अधिसूचित किया गया। यह 31 अक्टूबर, 2007 से प्रभावी हो गयी। इसके आधार पर कई राज्य सरकारों ने अपनी स्वयं की पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन नीतियाँ बनायीं हैं।

राष्ट्रीय पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन नीति (NRRP), 2007 उन सभी विकास परियोजनाओं के लिए लागू है जिनसे लोगों का अनैच्छिक विस्थान हो।

नीति का उद्देश्य विस्थापन को कम करना तथा जब तक संभव हो विस्थापन न करने वाले या कम से कम विस्थापन करने वाले विकल्पों को बढ़ावा देना है।

नीति में पर्याप्त पुनर्वास पैकेज और प्रभावित लोगों की सक्रिय भागीदारी के साथ पुनर्वास प्रक्रिया का शीघ्र कार्यान्वयन (Implementation) सुनिश्चित करना है।

नीति समाज के कमजोर वर्गों, विशेष रूप से अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की रक्षा की जरूरत की पहचान करती है।

विकासजनित विस्थापन तथा जनजातीय समूह
(Development Induced Displacement and Tribal Groups)

विकासजनित विस्थापन का सबसे अधिक दुष्प्रभाव जनजातीय समूहों पर पड़ता है। भारत की कुल जनसंख्या में जनजातीय समूह की भागीदारी सिर्फ 8.1% है, जबकि विस्थापन से प्रभावित लोगों के आंकड़ों पर नजर डालें तो विस्थापितों में जनजातीय समूह की संख्या का अनुपात 55.16% अर्थात् आधे से भी अधिक है।

विकास के लिए भूमि अधिग्रहण के कारण आदिवासियों का बड़े पैमाने पर विस्थापन एक चुनौती है। –कृष्णा तीरथ, महिला एवं बाल विकास मंत्री (मई, 2011)

उपरोक्त टिप्पणी गम्भीरता से यह गवाही देती है कि आदिम जाति कल्याण कानून जैसे-पेसा (PESA), वन अधिकार नियम, 2006 तथा यहाँ तक कि संविधान की पांचवी अनुसूची भी भारत के आदिवासी समुदायों को सुरक्षा प्रदान करने में पूरी तरह विफल रही है।

हाल के दिनों में विकास के लिए बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण, निजीकरण और भू-मंडलीकरण की प्रक्रियाओं को अपनाया गया। यह आदिवासियों के लिए एक बड़ा खतरा बनकर उभरा है। विडंबना यह है कि आधुनिक तथा सभ्य (Civilized) कहा

जाने वाला समाज उनकी पुरानी, पर्यावरण अनुकूल, शांतिपूर्ण तथा सामंजस्यपूर्ण जीवन शैली का शिकारी बन गया है।

खनिज तथा अन्य संसाधनों के लिए राज्य तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा प्रायोजित विकास परियोजनाओं के कारण आदिवासी उनकी भूमि तथा अन्य संसाधन बाजार की शोषणकारी शक्तियों (Exploitive Powers) के सामने आ गए हैं। शक्तिशाली संस्थाओं द्वारा आदिवासियों की भूमि का हस्तांतरण आम हो गया है। यह सबसे दुर्भाग्यपूर्ण है कि उनको संविधान द्वारा 'अपने परम्परागत तरीके से जीने की' दी गयी गारंटी का उल्लंघन संविधान को ज्यादा अच्छे से समझने वाले ही कर रहे हैं।

परियोजना प्रबंधकों को राज्य स्वामित्व वाली आदिवासी सामुदायिक भूमि (जिसका स्वामित्व सरकार के पास होता है तथा इसके लिए कोई मुआवजा (Compensation) नहीं दिया जाता है।) अपनी परियोजना के लिए आसान प्रविष्ट बिन्दु (Entry point) प्रदान करता है। परियोजना लागत को कम करने के लिए वे जान-बूझकर उच्च सामुदायिक भूमि तथा प्रशासकीय दृष्टि से पिछड़े क्षेत्र का चयन अपनी परियोजनाओं के लिए करते हैं, जहाँ कानूनी मुआवजा कम होता है।

ये तथाकथित विकास परियोजनाएँ आदिवासियों को कोई प्रत्यक्ष लाभ नहीं पहुँचाती हैं तथा उन्हें भूमिहीन और संसाधन रहित कर देती है। मौद्रिक लाभ उस समय कोई मायने नहीं रखता जब पीढ़ियों की जीवन शैली ही अप्रतिकार्य (जिसे सुधारा नहीं जा सके) रूप से बदल जाय। अपनी पारंपरिक बस्तियों से विस्थापन उन्हें तीव्र आघात तथा अनिश्चितता में छोड़ देता है।

आदिवासियों ने राष्ट्रीय विकास की उच्चतम कीमत चुकाई है क्योंकि उनके क्षेत्र संसाधन समृद्ध हैं। कोयला का 90% तथा अन्य खनिजों का लगभग 50% इनके ही क्षेत्र में हैं। इसके अलावा जंगल, पानी तथा अन्य स्रोत भी उनके निवास में बहुतायत में हैं। जनजातीय मामलों के मंत्रालय के अनुसार 1990 तक 85 लाख जनजातीय लोग विस्थापित हुए जो कुल विस्थापितों का लगभग 50% है, जबकि 1991 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में जनजातियों का अनुपात सिर्फ 8.1% है। लाखों आदिवासी 1990 के बाद बिना किसी उचित पुनर्वास के विस्थापित हुए हैं। (पश्चिमी ऋणदाताओं के दबाव में केन्द्र की उदारीकरण की नीति के कारण) फिर भी इसके अध्ययन के लिए अभी तक कोई उचित प्रयास नहीं हुए हैं।

संविधान का अनुच्छेद 46 अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के हितों को बढ़ावा देने और सामाजिक अन्याय और शोषण के सभी रूपों से उन्हें बचाने के लिए राज्य का दायित्व सुनिश्चित करता है। यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि आदिवासियों का उनकी जमीन से विस्थापन संविधान की पांचवी अनुसूची का उल्लंघन है क्योंकि यह जमीन तथा प्राकृतिक संसाधन के उनके मालिकाना हक, जो उनके जीवन के लिए आवश्यक है, से उन्हें वंचित (Deprived) कर देता है।

आदिवासी प्रकृति के बेहद नजदीक, जंगल तथा पहाड़ी क्षेत्रों में रहते आए हैं। आदिवासियों की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से शिकार, कंदमूल की खोज तथा झूम खेती रही है। 90% से ज्यादा जनजाति अपनी आजीविका (Livelihood) के लिए बहुत हद तक जंगल तथा जंगली संसाधनों पर निर्भर होते हैं। आधुनिक समाज में प्रचलित मानसिकता के विपरीत जनजातियाँ जमीन और जंगल को केवल एक आर्थिक वस्तु के रूप में नहीं देखती हैं उनके लिए ये उनकी संस्कृति तथा पहचान के केन्द्र भी हैं। परम्परागत रूप से इन्होंने अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था तथा सतत् प्रबंधन प्रणाली इन्हीं के आस-पास विकसित की है। इनकी संस्कृति का मूल समता (Equality) है अर्थात् यह सुनिश्चित करना कि हर परिवार को अपनी जरूरतें पूरा करने के लिए पर्याप्त अवसर मिलें। दूसरे, संसाधनों को अक्षय बनाए रखा जाता है अर्थात् जरूरत के हिसाब से इस्तेमाल तथा भविष्य के लिए बनाए रखना। तीसरा, सामुदायिक स्वामित्व वाली भूमि तथा जंगल में काम कर परिवार के एक उत्पादक सदस्य के रूप में ये अपेक्षाकृत एक उच्च स्तर / दर्जे का आनंद लेती हैं।

विस्थापन के कारण जनजातियों की समस्याएँ (Problems of Tribes due to Displacement)

1. जनजातीय समूह ज्यादातर अशिक्षित होते हैं तथा उन्हें कानूनों तथा अपने अधिकारों की ज्यादा जानकारी नहीं होती है। अत: वे विस्थापन के समय अपने लिए अच्छी तरह से नहीं सोच पाते हैं तथा वे अपने अधिकारों की मांग में कमजोर पड़ जाते हैं। इसका फायदा कॉरपोरेट जगत को मिलता है तथा वे आसानी से अपनी परियोजना के लिए अधिग्रहण (Acquisition) कर लेते हैं।
2. आदिवासियों की ज्यादातर संपत्तियाँ सामुदायिक होती हैं जिनका मालिकाना हक किसी व्यक्ति के पास नहीं होता है। अत: ये सरकारी संपत्ति मानी जाती हैं। सरकार इस संपत्ति/भूमि के अधिग्रहण के लिए मुआवजा नहीं देती है। (इससे परियोजना का खर्च कम करने में कंपनियों को सहायता मिलती है और वे जानबूझकर ऐसी भूमि को परियोजना के लिए चुनते हैं)
3. परियोजना के लिए भू-खण्ड पर लगे वनों को काट दिया जाता है तथा उस क्षेत्र में जनजातियों का आना मना कर दिया जाता है। इस प्रकार वे जंगल के कई उत्पादों के उपभोग में असमर्थ हो जाते हैं तथा अपनी आजीविका चलाना उनके लिए मुश्किल हो जाती है। अपने मूल स्थान (Place of Origin) से दूसरी जगह विस्थापित किए जाने पर भी इसी प्रकार की समस्याएँ उन्हें झेलनी पड़ती हैं।
4. यह देखा गया है कि जनजातियों को जो कुछ मुआवजा मिलता भी है तो उसे ये उपभोग वस्तुओं की खरीद पर खर्च कर देते हैं क्योंकि मुद्रा के रूप में बचत का प्रचलन उनमें नहीं होता है। अंतत: वे और भी गरीबी की ओर बढ़ जाते हैं।

5. विकास परियोजनाओं का जरा भी लाभ जनजातीय समुदायों को नहीं मिल पाता है। उन्हें न तो कोई सुविधा मिलती है (जैसे- बिजली, पानी) न ही लाभ में कोई हिस्सा मिलता है। जनजातियों के कल्याण के लिए भी उस लाभ से, जो उन्हें विस्थापित करके लिया गया है, कोई मदद नहीं दी जाती है।
6. विकास परियोजनाओं से उत्पन्न रोजगार में भी जनजातियों को कोई भागीदारी नहीं मिल पाती है क्योंकि वे नई तकनीकों तथा मशीनों से अनभिज्ञ होते हैं।
7. उनके जमीनों तथा सामुदायिक भूमि (Community Land) या संसाधनों का लाभ बाहरी लोग लेने लगते हैं। इसी तथ्य को आधार बनाकर नक्सलवादी भी क्षेत्रों में अपने पैर जमा लेते हैं।
8. विस्थापन के कारण जनजातियों के लिए चलाए जा रहे कल्याण कार्यक्रमों का लाभ भी उन्हें नहीं मिल पाता है क्योंकि नई जगह पर फिर कल्याण कार्यक्रम शुरू करने में काफी देर होती है।

इनके अलावा अन्य समस्याएँ भी हैं, जैसे–

- जनजातीय पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव उत्पन्न हुआ है।
- पैतृक स्थान के परित्याग (Abandonment) की पीड़ा से पीड़ित हुए हैं।
- उनकी अपनी बाजार एवं व्यापार व्यवस्था का ह्रास हुआ है।
- अनेक पवित्र एवं सांस्कृतिक स्थलों का विनाश हुआ है।
- नए क्षेत्र में अनुकूलन में कठिनाई उत्पन्न हुई है।

विस्थापन की समस्या के समाधान हेतु किए गए प्रयास (Efforts made to Resolve Displacement Problem)

विकास योजनाओं की अनिवार्यता के कारण विस्थापन एक आवश्यकता बन गई है। अतः इसके दुष्परिणामों से बचने हेतु सरकार द्वारा कई प्रयास किए गए हैं।

1. ***पेसा अधिनियम, 1996 (PESA Act, 1996)–*** इस अधिनियम को आदिवासी समाज को प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण का अपना परंपरागत अधिकार प्राप्त करने के लिए पारित किया गया। यह राज्यों को केन्द्र सरकार से असंगत नियमों (Inconsistent Rules) को बदलने की आवश्यकता पर जोर देता है।
2. ***वन अधिकार अधिनियम, 2006 (Forest Rights Act, 2006)–*** यह अधिनियम वन भूमि और उससे जुड़े व्यवसाय की पहचान जनजातियों तथा अन्य परम्परागत वनवासियों के लिए करता है तथा उन्हें उस व्यवसाय का अधिकार देता है। इन अधिकारों में लघु वन उपजों को इकट्ठा करना, उन्हें बेचना, रहने तथा खेती के लिए वन भूमि का उपयोग आदि शामिल हैं।
3. ***अनुसूची-V क्षेत्रों में भूमि हस्तांतरण नियम (Land Transfer Rules in Schedule - V Areas)–*** इसके द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी व्यक्तियों द्वारा भूमि की खरीद पर रोक लगायी गयी है, ताकि इनके अधिकारों की सुरक्षा हो सके।
4. ***राष्ट्रीय जनजाति नीति (National Tribal Policy)–*** जनजातीय मामलों के मंत्रालय ने एक राष्ट्रीय जनजाति नीति बनाई है जिसमें जनजातियों से संबंधित मामलों में अतिरिक्त सावधानी बरतने की बात कही गयी है।
5. ***भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 2014 (Land Acquisition Act, 2014)–*** इस अधिनियम के अंतर्गत जनजातियों के कल्याण को भी ध्यान में रखा गया।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम-2014 की मुख्य विशेषताएँ (Main Features of Land Acquisition Act - 2014)

- जमीन का मुआवजा सर्किल रेट पर नहीं, बाजार मूल्य पर तय होगा। इस विधेयक में यह प्रावधान किया गया है कि प्रभावितों को ग्रामीण क्षेत्र में चार गुना और शहरी क्षेत्रों में दो गुना मुआवजा मिलेगा।
- यह पहला कानून है, जिसमें पुनर्वास और पुनर्स्थापन की बात कही गयी है। एकमुश्त नकद मुआवजे के साथ इसमें जमीन के बदले जमीन, आवास और रोजगार जैसे विकल्प दिए गए हैं।
- यह पुराने मामलों पर भी लागू होगा। विधेयक में यह प्रावधान है कि अगर जमीन पांच वर्ष पहले अधिग्रहित की जा चुकी है, लेकिन प्रभावितों को अब तक मुआवजा नहीं मिला है या जमीन पर कब्जा नहीं किया गया है, तो भूमि अधिग्रहण की पूरी प्रक्रिया नए तरीके से नए कानून के तहत होगी।
- इस विधेयक को व्यापक सहभागी और अर्थपूर्ण बताया जा रहा है। इसकी वजह यह है कि भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में अब स्थानीय लोगों की सहमति जरूरी होगी और स्थानीय पंचायतों की भी इसमें भागीदारी होगी। इतना ही नहीं, पुनर्वास और पुनर्स्थापन की निगरानी के लिए केन्द्र, राज्य और जिला स्तर पर कमेटियों का गठन किया जाएगा।

- आदिवासी समुदायों और अन्य वंचित वर्गों को लेकर इसमें विशेष प्रावधान किए गए हैं। आदिवासी/अनुसूचित जनजाति बहुल क्षेत्रों में ग्राम सभा की अनुमति के बिना जमीन का अधिग्रहण नहीं हो सकेगा। इसके तहत पंचायत कानून, 1996 और वन अधिकार कानून, 2006 के तहत मिले अधिकार की सुरक्षा भी सुनिश्चित की जाएगी।
- विस्थापितों के हितों की रक्षा करते हुए प्रस्तावित कानून में यह प्रावधान किया गया है कि जब तक विस्थापितों का पूरा भुगतान नहीं हो जाता और उनके पुनर्वास और पुनर्स्थापन की व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक उन्हें जमीन से बेदखल (Evict) नहीं किया जाएगा।
- निजी परियोजनाओं के लिए जमीन तभी अधिग्रहित की जाएगी, जब 80 फीसदी भू-स्वामी इसके लिए अनुमति देंगे। पीपीपी (सार्वजनिक निजी भागीदारी) के लिए 70 फीसदी भू-स्वामियों की सहमति जरूरी होगी।
- नए कानून के तहत मुआवजा राशि पर आयकर नहीं लगेगा। स्टांप शुल्क से भी छूट रहेगी।
- इस विधेयक में किसानों के लिए उचित और न्यायसंगत हर्जाना और कोई भी जमीन बलपूर्वक अधिग्रहित नहीं किए जाने का भी प्रावधान है।
- जमीन देने वाले और आजीविका गंवाने वाले के लिए मुआवजा पाँच लाख रुपये या एक नौकरी और एक वर्ष तक मासिक तीन हजार रुपये भत्ता आदि के रूप में हो सकता है।
- बहुफसल खेती वाली जमीन का अधिग्रहण नहीं किया जाएगा और यदि इसकी जरूरत हुई, तो संबंधित राज्य सरकार इस संबंध में निर्णय लेगी।
- सिंचाई परियोजनओं के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं, जिसके तहत सिंचाई परियोजना की समयावधि में छूट होगी। ऐसी परियोजनाओं में भू-स्वामी को सिर्फ जमीन का मुआवजा मिलेगा। पुनर्वास और पुनर्स्थापन का प्रावधान हटा लिया गया है। इसके अतिरिक्त सिंचाई परियोजना के लिए सामाजिक प्रभाव के आकलन का प्रावधान भी नहीं होगा।
- प्रस्तावित कानून के तहत भूमि के बढ़े हुए मूल्य में मूल स्वामी को भी हिस्सा दिया जाएगा। अधिग्रहण के पांच साल के भीतर यदि जमीन किसी तीसरी पार्टी को बढ़ी कीमतों पर दी जाती है, तो बढ़े मूल्य का 40 प्रतिशत हिस्सा मूल स्वामी (Original Owner) को दिया जाएगा।
- अर्जेंसी क्लॉज की परिभाषा को राष्ट्रीय सुरक्षा और प्राकृतिक आपदा तक सीमित किया गया है। इन दोनों परिस्थितियों में ही अर्जेंसी क्लॉज का इस्तेमाल किया जा सकेगा।
- नया कानून तीन महत्त्वपूर्ण बदलाव लाता है।
  - मुआवजे को बहुत बढ़ाया जाना है-शहरी क्षेत्रों में बाजार मूल्य का दोगुना और ग्रामीण क्षेत्रों में चार गुना तक।
  - जमीन मालिकों के साथ ही 'आजीविका गंवाने वाले (विशेष रूप से बटाईदार और जमीन से आजीविका चलाने वाले मजदूर) अब राहत और पुनर्वास पैकेज के हकदार हैं।
  - प्रक्रियात्मक बाधाओं को उठाया गया है-निजी कंपनियों के मामले में अधिग्रहण को अब ज्यादा समितियों से और अधिक मंजूरी की जरूरत है और इससे प्रभावित होने वाली आबादी का कम से कम 70 फीसदी की सहमति होनी आवश्यक है।

6. परियोजना निर्माण, उसे लागू करना, पुनर्वास सम्बन्धी नियम इत्यादि बनाने में सभी स्तरों पर गैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी भी आवश्यक है।
7. विस्थापन तथा पुनर्वास के समय मानवीय गरिमा, मानवाधिकार और स्थानीय लोगों की संस्कृति को पूरा सम्मान देना चाहिए।
8. पुनर्स्थापना स्थलों पर आधारभूत संरचनाओं जैसे-स्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य सरकारी सुविधाओं जैसे-पोस्ट ऑफिस, पुलिस स्टेशन आदि की स्थापना होनी चाहिए।

पुनर्वास की व्यवस्था इन जनजातीय समूह के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पक्षों को ध्यान में रखते हुए करनी चाहिए। चूंकि उनके सांस्कृतिक लक्षण और संरचनात्मक विशेषताएँ (Structural Features) अन्य जातीय समूह की तुलना में भिन्न हैं, वे अपने सांस्कृतिक प्रतीकों के प्रति कठोर हैं तथा परिवर्तन को प्रेरित करने वाले कारकों के प्रति कम उत्साह रखते हैं। दूसरी ओर विकास तथा आधुनिकीकरण के लिए परियोजनाओं की स्थापना भी अपरिहार्य है, परन्तु ऐसा जनजातीय समुदाय की कीमत पर नहीं होना चाहिए। अत: इनकी समस्याओं का उपयुक्त समाधान/निदान करते हुए विकास और आधुनिकीकरण के लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए। जनजातियों के विस्थापन से उत्पन्न समस्याओं के बावजूद आर्थिक विकास और पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए प्रारम्भ किए गए विभिन्न परियोजनाओं की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है।

विस्थापितों की समस्या को ध्यान में रखते हुए बनायी गयी विधियाँ तथा अन्य प्रयास उनकी समस्या के आघात को कम तो करती हैं पर इनसे भी उनके असंतोष को कम नहीं किया जा सका है। कई स्थानों पर कई परियोजनाओं का विरोध इसके स्पष्ट संकेत देते हैं। इस असंतोष को कम करने के लिए कुछ अतिरिक्त प्रयासों की आवश्यकता है।

जनजातीय विस्थापन से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने हेतु सुझाव (Suggestions to Overcome the Problems Arising From Tribals Displacement)

1. परियोजना से संबंधित सभी जानकारियाँ स्पष्ट की जानी चाहिए। जैसे- परियोजना की प्रकृति क्या है? इससे किन्हें लाभ मिलेगा? कितने लोग प्रभावित होंगे इत्यादि।
2. परियोजना निर्माण के समय प्रभावितों की भी भागीदारी (Participation) सुनिश्चित होनी चाहिए। इससे परियोजना के सफल होने की संभाविता में वृद्धि हो जाती है।

3. विस्थापन के तुरंत बाद पुनर्वास की व्यवस्था होनी चाहिए। पुनर्वास स्थलों तक सार्वजनिक सुविधा जैसे-सड़क, बिजली, पानी इत्यादि का उत्तम प्रबंध होना चाहिए।
4. विस्थापन के समय ही मुआवजे का भुगतान उचित तरीके से होना चाहिए। मुआवजे की राशि भी उचित होनी चाहिए।
5. सभी राज्यों में पुनर्वास अधिनियम का निर्माण होना चाहिए तथा इसे लागू किया जाना चाहिए। अभी तक बहुत ही कम राज्यों (महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, कर्नाटक) में पुनर्वास अधिनियम बन पाए हैं।

किसान आत्महत्या (Farmers Suicides)

भारत की लगभग 2/3 जनता कृषि से अपना जीवन यापन करती है। लगभग 1.2 अरब की जनसंख्या वाले इस देश में सबसे ज्यादा रोजगार कृषि से ही मिलता है। भारत में सबसे अधिक छोटे कृषक हैं। ये कृषक अपनी छोटी भूमि पर कृषि कार्य करते हैं तथा अपना और अपने परिवार का पेट पालते हैं।

हालांकि 90-91 अर्थात् उदारीकरण (Liberalization) के बाद खेती को पृथ्वी, मिट्टी, जैव-विविधता तथा पर्यावरण से अलग कर वैश्विक कंपनियों तथा भू-मंडलीकरण से जोड़ दिया गया। भूमि की उदारता को कम्पनियों के मुनाफे के लालच से जोड़ दिया गया। बड़ी-बड़ी कम्पनियों के आने से तथा कृषि को वैश्विक बाजार से जोड़ दिए जाने के कारण कृषि वस्तुओं के मूल्य में भारी प्रतिस्पर्धा आयी, वहीं कृषि की लागत भी बढ़ी। इस प्रक्रिया ने छोटे-छोटे कृषि कार्यों (जोतों) की उपयोगिता (Utility) पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। ये छोटे किसान न तो इतने सक्षम हैं कि अपनी छोटी सी भूमि में निवेश करें और ना ही इतने संगठित कि बाहरी बड़ी ताकतों का मिलकर मुकाबला कर सकें। कृषि उपजों की घटती कीमतों तथा कृषि में बढ़ती लागतों के कारण छोटे किसान ऋणजाल में फंसने के लिए मजबूर हो रहे हैं। यह ऋणजाल इन्हें अनंत गरीबी की ओर ढ़केल रहा है और अंततः व्यक्ति के व्यक्तित्व में विघटन कर उसे आत्महत्या के लिए मजबूर कर रहा है।

किसान आत्महत्या का स्वरूप (Nature of Farmers Suicide)

जनगणना रिपोर्ट, 2011 के अनुसार भारत में किसानों की आत्महत्या दर कुल आत्महत्या दर से 47% ज्यादा है। कुछ राज्यों में जहाँ कृषि संकट सर्वाधिक है यह दर 100% से भी ज्यादा है। यह हालात तब है जब जनगणना 2011 भारत में किसानों के कुल संख्या में कमी बता रही है।

नई जनगणना (New Census) के कुल मात्रा को राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों से मिलाने पर चौंकाने वाले नतीजे सामने आते हैं। उदाहरण के लिए आंध्र प्रदेश के एक किसान के आत्महत्या करने की संभावना देश के किसी अन्य नागरिक (किसानों को छोड़कर) की अपेक्षा तीन गुना है।

किसान आत्महत्या की तीव्रता में कोई गिरावट नहीं दिख रही है और ना ही आत्महत्याओं की संख्या में कोई भारी गिरावट दिख रही है। दरअसल 2011 की किसान आत्महत्या दर (16.3 किसान प्रति 1,00,000 किसान) 2001 की किसान आत्महत्या दर (15.8 किसान प्रति 1,00,000) से थोड़ी ही ज्यादा है।

इन आत्महत्याओं की संकेन्द्रण (Concentration) 5 राज्यों के कृषि क्षेत्र में अधिकतम है। वे 5 राज्य हैं:- महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ तथा कर्नाटक। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़े बताते हैं कि देश में कुल किसान आत्महत्या का 2/3 (दो तिहाई) इन्हीं 5 राज्यों में होता है। वह भी तब जब जनगणना आँकड़ों के अनुसार इनमें से 4 राज्यों में किसानों की संख्या में कमी आयी है। सिर्फ महाराष्ट्र में इनकी संख्या में बढ़ोतरी हुई है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में किसान आत्महत्या दर 29.1 प्रति 1,00,000 किसान है जो राष्ट्रीय किसान आत्महत्या औसत 16.3 से कहीं ज्यादा है।

लगभग 22 बड़े राज्यों में से 16 राज्यों में किसान आत्महत्या की दर बांकी जनसंख्या की आत्महत्या दर (11.1 प्रति 1,00,000) से ज्यादा है।

यह भयावह स्थिति (Terrible Situation) तब दिख रही है जब राज्य स्तर पर आंकड़ों से छेड़-छाड़ हो रही है, जैसे छत्तीसगढ़ ने साल 2011 के लिए शून्य किसान आत्महत्या रिपोर्ट दर्ज किया है, जबकि इससे पहले के तीन सालों में 4,700 किसान आत्महत्या दर्ज की गयी थी। अन्य राज्यों तथा क्षेत्रों में भी इसी तरह के तरीके अपनाने की आशंकाओं को नकारा नहीं जा सकता। (पुदुचेरी ने भी 2011 में शून्य किसान आत्महत्या दिखायी है।)

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के दस्तावेजों में दर्ज रिपोर्टों की भी आलोचना कई बार हुई है। दरअसल अधिकांश घटनाओं में किसान अपने परिवार के सदस्यों की हत्या कर खुद आत्महत्या कर लेते हैं। इस प्रकार की घटनाओं में किसान आत्महत्या एक दर्ज की जाती है और अन्य मौतों को हत्या में गिन लिया जाता है जबकि किसान आत्महत्या की सही स्थिति के आकलन के लिए इन सभी मौतों को किसान आत्महत्या में गिना जाना चाहिए।

किसान आत्महत्या के कारण (Causes of Farmers Suicide)

1. ***उदारीकरण (Liberalization)*** – 1998 में भारत को विश्व बैंक के दबाव में अपना बीज बाजार कारगिल, मॉनसान्टो, सि-जेन्टा जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोलना पड़ा।

इन कम्पनियों ने कृषि की लागत व्यवस्था (Cost System) को रातों-रात परिवर्तित कर दिया। परम्परागत बीजों का स्थान इनके रूपांतरित बीजों ने ले लिया जिसने कृषि लागत बढ़ा दी।

दूसरी ओर कृषि बाजार के खुलने तथा कृषि जनित वस्तुओं के सस्ते आयात से कृषि उपजों की कीमतों में कमी आयी इस कारण से किसान को लागत तथा कीमत दोनों स्तरों पर हानि उठानी पड़ी, जिसने गरीब किसानों को ऋणजाल (Debt trap) की तरफ ढ़केल दिया। इन किसानों को सिर्फ आर्थिक हानि ही नहीं हुई, इनकी आय इतनी कम हो गयी कि ये भुखमरी के शिकार होने लगे। इस प्रकार के संकट ने किसानों को आत्महत्या के लिए प्रेरित किया।

2. ***वाणिज्यीकरण (Commercialization)*** – भारत में कृषि के वाणिज्यीकरण ने काफी जोर पकड़ा खासकर वैश्वीकरण, उदारीकरण के बाद। इसके बाद भारत में नकदी फसलें खासकर कपास का उत्पादन जोड़ पकड़ने लगा कपास क्षेत्रों के किसान मोटा अनाज तथा अन्य खाद्यान्न फसलों की जगह कपास उगाने लगे। इससे किसानों को खाद्यान्न की उपलब्धता कम हो गयी। इधर नकदी फसल का ज्यादातर लाभ बिचौलियों और साहूकारों को हुआ इससे किसानों की क्रयशक्ति (Purchasing Power) में कमी आ गयी और किसान खाद्यान्न नहीं खरीद पाने के कारण भुखमरी के शिकार होने लगे। ऋणग्रस्तता तथा भुखमरी से परेशान किसानों की आत्महत्या दर इन कपास क्षेत्रों में ज्यादा है।

3. ***विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीज (Seeds of Foreign Multinational Companies)*** – बीज बाजार के खुलने पर विदेशी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जब बीज बाजार में अपने रूपांतरित बीज (Modified Seeds) लेकर आयीं तो इन बीजों के महंगे होने के साथ-साथ इनमें कई खामियाँ भी थीं। इन बीजों में अधिक खाद, अधिक पानी तथा अधिक कीटनाशी की आवश्यकता होती है, जो कृषि कार्य की लागत को और बढ़ाती है।

इसके अलावा ये बीज बौद्धिक संपदा अधिकार के तहत इस प्रकार रूपांतरित होते हैं कि इनका प्रयोग सिर्फ एक बार ही हो पाता है। उपज का प्रयोग फिर बीज के रूप में नहीं हो पाता या होता भी है तो कम उपज देता है। इस प्रकार किसानों को हर बार बाजार से नए बीज खरीदने पड़ते हैं जो किसानों के लिए पहले लगभग मुफ्त उपलब्ध होता था।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने इन तरीकों से बीज बाजार पर एकाधिकार कर लिया है। रिपोर्टों के अनुसार जब से बीज बाजार अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोला गया है (1997) तब से लगभग 25,000 से ज्यादा किसान आत्महत्या कर चुके हैं।

कम्पनियाँ अपने बीजों को कई बार बिना परीक्षण तथा अनुकूलित बीजों को भी बाजार में उतार देती हैं। कम्पनी बीजों को बेचने के लिए कई बार गलत वायदे भी करती हैं। उदाहरण के लिए 2002 में जब मॉनसान्टो ने पहली बार बीटी कपास बाजार में उतारा था तो किसानों को 1,500 किलोग्राम/एकड़ की उपज का वायदा किया गया था, परन्तु वास्तविक उपज करीब 200 किग्रा/एकड़ तक ही रही। इससे किसानों को 10,000 रुपये प्रति एकड़ के अतिरिक्त लाभ की जगह 6,400 रुपये प्रति एकड़ की हानि हो गयी। अगर किसानों की पूरी हानि को मिला दिया जाय तो यह हानि लगभग एक अरब करोड़ की थी।

इस प्रकार की हानि को निजी दलाल नकली बीज बेच कर और ज्यादा बढ़ा रहे हैं।

4. ***नई प्रौद्योगिकी तथा उच्च उत्पादन विधियों की जानकारी का अभाव (Lake of Knowledge of New Technology and High Production Methods)*** – भारत में अभी भी अधिकतर कृषि में परम्परागत तरीकों (Traditional Method) तथा उपकरणों का ही प्रयोग हो रहा है। अधिकतर किसान छोटी भूमि के स्वामी हैं उनके पास नई प्रौद्योगिकी या उपकरण लगाने के लिए या तो धन की कमी होती है या जोतें इतनी छोटी होती हैं कि वहां निवेश करना नुकसानदायक होता है। ये छोटे किसान ज्यादातर अशिक्षित भी होते हैं इन्हें वैज्ञानिक कृषि की कोई जानकारी नहीं होती है। ये अपने खेतों की मिट्टी की जाँच कराए बिना ही यूरिया, नाइट्रोजन तथा पोटाश का उपयोग गलत अनुपात में तथा अधिक मात्रा में करते हैं। इससे इनकी लागत तो बढ़ती ही है उपज भी सही नहीं होती ऊपर से पानी की आवश्यकता और बढ़ जाती है।

5. ***पानी की कमी / मानसून आधारित कृषि (Water Deficiency / Monsoon based Agriculture)*** – भारत में अभी भी 60% से ज्यादा कृषि मानसून वर्षा पर निर्भर है। ज्यादातर खेतों तक सिंचाई सुविधा का नितांत अभाव है। भू-जल स्तर लगातार नीचे जा रहा है इस कारण किसानों को सिंचाई के लिए मंहगे पम्प तथा गहरे बोरिंगों की आवश्यकता पड़ रही है जिससे कृषि लागत बढ़ रही है।

वैश्विक भू-तापन तथा जलवायु परिवर्तन (Climate Change) के कारण मौसम में भी अनियमित बदलाव आ रहे हैं। इस बदलाव के कारण तथा वर्षा की अनियमितता के कारण फसलों को बारम्बार नुकसान पहुँच रहा है। लगातार फसलों के नुकसान को गरीब किसान झेल नहीं पाते और ज्यादा निर्धनता से ग्रसित हो जाते हैं।

6. ***साख की उचित दर पर अनुपलब्धता (Non-Availability of Credit at Reasonable Rates)*** – भारत में किसान आत्महत्या का सबसे बड़ा कारण ऋणग्रस्तता है। किसान ज्यादातर अनौपचारिक क्षेत्र से ऋण लेते हैं जिनकी ब्याजदर 36% से 120% तक होती है। इतने उच्च ब्याजदर पर ऋण लेने से किसानों पर ऋणजाल में फंसने का एक बड़ा खतरा मंडराता रहता है। कृषि की लागतों के लिए दिए गए ऋण को चुकाने के लिए किसान खड़ी फसल (Standing Crop) को बेचने के लिए तैयार रहते हैं। उनके ऊपर जल्द से जल्द ऋण चुकाने का दबाव बना रहता है। इससे फसल के उत्पादन के तुरन्त बाद किसान अपनी फसल सस्ते मूल्य पर बेचने के लिए बाध्य होते हैं। इस कारण किसान अपने उत्पादन का सही लाभ नहीं ले पाते। इनके उत्पादन का लाभ मंडी व्यापारी बिचौलिए तथा साहूकारों को मिलता है। इन किसानों को औपचारिक क्षेत्र से काफी कम या नहीं के बराबर ऋण मिल पाता है क्योंकि बैंक से ऋण के लिए कई कागजी कामों तथा कई बार जमानत/गिरवी रखने की जरूरत पड़ती है, जो इन निर्धन किसानों के बस की बात नहीं होती है। बैंकों को अपने ऋण के डूबने का अंदेशा होता है इसलिए बैंक इन्हें कर्ज देने से कतराती है।

7. ***उपयुक्त बाजार का अभाव (Lock of Suitable Market)*** – बाजार के अभाव के कारण किसानों को अपना उत्पाद सस्ते दरों पर बेचना पड़ता है। सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा करती है, खाद्यान्न खरीद केन्द्रों की घोषणा करती है, परन्तु इन केन्द्रों पर भ्रष्टाचार आदि के कारण किसानों को सही मूल्य नहीं मिल पाता है। ये केन्द्र भी काफी दूरी पर खुले होते हैं। यहाँ तक कि स्थानीय बाजारों की भी ग्रामीण क्षेत्रों में काफी कमी है, अतः किसानों को अपना उत्पाद बिचौलियों को बेचना पड़ता है जो इनके उत्पादों की सही कीमत नहीं देते हैं।

8. ***आधारभूत संरचना का अभाव (Lack of Infrastructure)*** – भारत में कृषि क्षेत्र में आधारभूत संरचना का बड़ा अभाव है। ज्यादातर खेतों तक बिजली की पहुँच नहीं है तथा ईंधनों के दाम बढ़ते जा रहे हैं। उपज के बाद उत्पादों को बाजार तक पहुँचाने वाली सड़कें खराब स्थिति में हैं। उत्पादों को कुछ समय तक बचाए रखने के लिए कोल्ड स्टोरेजों की कमी भी काफी ज्यादा है।

कई गाँवों में तो बिजली के कारण तथा निवेश की समस्या के कारण कोल्ड स्टोरेज हैं हीं नहीं। जो शीतगृह (कोल्ड स्टोरेज) हैं भी वहाँ काफी भीड़ है तथा उनका किराया भी मनमाना रखा जाता है जबकि शीतगृहों को सहायिकी भी उपलब्ध करायी जाती है।

उपरोक्त कारणों से किसान के सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति में गिरावट आयी है। किसान एक उत्पादक की जगह एक बीज खरीदने वाला उपभोक्ता बनकर रह गया है, जो ऋणजाल में फंसकर अपना सर्वस्व गवाँ चुका है और उसके पास आत्महत्या के सिवाय कोई विकल्प नहीं रह जाता है।

किसान आत्महत्या को दूर करने के लिए किए गए प्रयास (Efforts Made to Eliminate Farmer Suicides)

सरकारी स्तर पर किसान आत्महत्या को रोकने के कई उपाय किए गए हैं। भारत सरकार ने विदेशी सस्ते आयात की प्रतिस्पर्धा (Competition of Import) से किसानों को बचाने के लिए सभी विकासशील देशों के साथ मिलकर यह मुद्दा विश्व व्यापार संगठन में उठाया है कि जहाँ एक ओर विकसित देशों द्वारा कृषि व्यापार पर सहायिकी (Subsidy) देने को बढ़ावा दिया जा रहा है। वहीं एक विकासशील देश को अपने किसानों की, कृत्रिम रूप से सस्ती की गई वस्तुओं से रक्षा करने से रोका जा रहा है। कृषि वस्तुओं की वैश्विक कीमतें भारी मात्रा में घटी हैं। जहाँ विकसित देश लगातार अपने किसानों को गलत तरीके से सहायिकी दे रहे हैं वहीं विकासशील देशों को अपने किसानों को दी जाने वाली सब्सिडी को कम करने को कहा जा रहा है। उदाहरण के लिए अमेरिका अपने सोया किसानों को 193 डॉलर प्रति टन की सहायता प्रदान करता है।

विश्व स्तर पर इसके समाधान के लिए भारत अन्य विकासशील देशों के साथ मिलकर विश्व व्यापार संगठन में आन्दोलन चला रहा है। भारत में सरकार ने कृषि क्षेत्र में कई सुधार भी किए हैं तथा ग्रामीण क्षेत्र में अवसंरचना के विकास के कार्य भी चलाए जा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत पक्की सड़कें बनवाई जा रही हैं, राजीव गांधी विद्युतीकरण योजना के तहत बिजली पहुँचाई जा रही है, नलकूपों के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है।

सरकार किसानों के हितों के लिए विभिन्न सहायिकी कार्यक्रम भी चला रही है। खाद्य, बीज, कृषि उपकरणों आदि की खरीद पर सरकार से काफी सहायता दी जाती है जिससे किसानों की कृषि लागत में कमी आती है। वहीं दूसरी तरफ ज्यादा फसल उत्पादन के बाद किसानों को उनका उचित मूल्य मिल पाए इसके लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा की जाती है, जिस पर सरकार खाद्यान्नों की खरीद करती है।

किसान आत्महत्या के पीछे मुख्य कारण ऋणग्रस्तता को माना गया है। इसके लिए सरकार रिजर्व बैंक द्वारा बैंकों को प्राथमिक क्षेत्रक में ऋण वितरण के निर्देश देती है। इस ऋण पर सरकार द्वारा ब्याज सहायिकी भी प्रदान की जाती है जिससे किसानों को कम ब्याजदर पर ऋण उपलब्ध होता है जिसे किसान आसानी से

लौटा पाते हैं। इसके अलावा उन्हें अनौपचारिक क्षेत्र (Informal Sector) से ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। आसान पहुँच तथा बार-बार के बैंक के चक्करों से किसानों को बचाने के लिए किसान क्रेडिट कार्ड जैसी योजनाएँ चलाई गयी हैं। बैंकों को ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक खोलने के लिए प्रोत्साहित भी किया जा रहा है।

इनके साथ किसानों के ऋणों को कई बार माफ भी किया गया है। किसानों को फसलों की अनिश्चितता से बचाने तथा संकट के समय जोखिम को कम करने के लिए कई प्रकार के बीमा योजनाओं को सरकार के निर्देश से लाया गया है। जैसे–बागवानी, वृक्षारोपण, पुष्प खेती बीमा योजना, कृषि पम्प बीमा, पशुओं के लिए बीमा, कुक्कुटों के लिए बीमा, बैलगाड़ी बीमा और सबसे प्रमुख राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना जो 1999-2000 की रबी फसलों से केन्द्र सरकार द्वारा लागू किया गया। इस योजना का उद्देश्य किसानों को फसलों के नुकसान (प्राकृतिक आपदा, कीट आक्रमण से) से बचाने तथा नई प्रौद्योगिकियों के प्रयोग के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना है।

किसान क्रेडिट कार्ड पर भी व्यक्तिगत दुर्घटना बीमा प्रदान किया जाता है। इसके अलावा आम जनजीवन की आकस्मिकताओं से बचाने के लिए भी सरकार की कई बीमा योजनाएँ हैं, जो किसानों को भी मदद करती है, जैसे–जननी सुरक्षा योजना, आंगनबाड़ी द्वारा पोषाहार, स्कूलों में मिड-डे मील (मध्याह्न भोजन)।

सरकार ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा सभी निर्धनों को रियायती दर (Discounted Rate) पर खाद्यान्न वितरण की व्यवस्था की है। अब इसे खाद्य सुरक्षा अधिनियम द्वारा और अधिक विस्तृत किया गया है तथा प्रभावी बनाया गया है। इसके द्वारा सभी निर्धनों, जिसमें किसान भी शामिल हैं, को भुखमरी से बचाने के लिए कदम उठाए गए हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए खाद्यान्नों की खरीद न्यूनतम समर्थन मूल्य पर की जाती है, जो किसानों को लाभ पहुँचाता है। किसानों को अपने कृषि वस्तुओं की उचित कीमत मिले इसके लिए कई जगह कृषि बाजारों की भी व्यवस्था की गयी है।

मनरेगा जैसे कार्यक्रमों द्वारा किसानों तथा अन्य निर्धनों को अतिरिक्त रोजगार के साधन उपलब्ध कराए गए हैं जिससे संकट के समय भी वे संसाधन विहीन न हों। किसानों को कृषि में प्रयुक्त होने वाली नवीनतम तकनीकों (New Technologies) की जानकारी तथा विधियों के प्रयोग के लिए सूचना तंत्र का जाल बिछाया जा रहा है। हरेक ग्राम पंचायत को ब्रॉडबैंड से जोड़ने की योजना है। हरेक जिले में मिट्टी के परीक्षण के लिए प्रयोगशालाओं की स्थापना की गयी है। किसानों की सुविधा के लिए 24 घण्टे सूचना सेवा स्थापित की जा रही है। ई-चौपालों की मदद से किसानों में जागरुकता बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं। प्रखण्ड स्तर पर किसानों को प्रशिक्षण देने के लिए कई कार्यशालाओं का आयोजन किया जाता है।

मूल्यांकन (Evaluation)

अपने किसानों को सस्ते आयातों से बचाने के लिए सरकार संघर्षरत तो है, परन्तु वहीं विकसित देशों तथा विश्व व्यापार संगठन के दबाव के कारण सीमा शुल्कों (Custom Duties) में कमी, बाजार तक पहुँच आदि छूट बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को दी जा रही है। अभी तक विकासशील देश कुछ भी हासिल नहीं कर पाए हैं।

भारत सरकार ने आधारभूत संरचना निर्माण में बिजली सड़क पर तो ध्यान दिया है, परन्तु शीतगृह, वातानुकूलित परिवहन सेवा, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग इत्यादि की स्थापना के प्रयास बहुत कम हुए हैं। इस क्षेत्र में निजी निवेश को भी सरकार ज्यादा आकर्षित नहीं कर पायी है। सरकार की तरफ से सहायिकी का ज्यादातर अंश उत्पादकों को दिया जाता है। इससे कृषकों तथा अन्य उपभोक्ताओं को काफी कम लाभ मिल पाता है।

न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा होती है पर खाद्यान्न मंडियाँ ज्यादातर समय बन्द ही रहती हैं। जिस समय खाद्यान्न खरीद होती है वहाँ भी गरदा, भूसा, लदान आदि के नाम पर तथा गुणवत्ता के नाम पर काफी बट्टा काट (Discount) लिया जाता है। वहाँ की लम्बी कतार, दूरी तथा परेशानियों से बचने के लिए किसान न्यूनतम मूल्य से भी कम पर बिचौलियों के हाथों अपनी उपज बेचने के लिए मजबूर होते हैं।

सरकार तथा भारतीय रिर्जब बैंक के निर्देशों के बावजूद बैंक प्राथमिक क्षेत्र में ऋण देने में आनाकानी करते हैं। छोटे किसानों के पास गारंटी के नाम पर कुछ भी नहीं होता है। छोटे किसान अपनी ऋण जरूरतों का 90% से ज्यादा अनौपचारिक क्षेत्र से लेते हैं। इस कारण ऋण माफी आदि जैसे-उपाय भी इनके काम नहीं आते तथा ये लगातार शोषण के शिकार होते रहते हैं।

बीमा कंपनियाँ भी बीमा की अदायगी समय पर नहीं करती या अदा न करने के बहाने ढूंढती रहती हैं।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में भ्रष्टाचार की वजह से गरीबों को निर्धारित मात्रा से कम तथा निम्न गुणवत्ता (Low Quality) के खाद्यान्नों का वितरण किया जाता है।

भ्रष्टाचार के कारण मनरेगा जैसे अतिरिक्त आय के साधन भी इनके लिए कामयाब नहीं हो पा रहे हैं। मनरेगा में ठेकेदार अपने जानकारों को काम देना, समय पर मजदूरी नहीं देना तथा मशीनों से काम करवाना जैसे भ्रष्ट आचरण करते हैं।

कृषि वस्तुओं की विपणन व्यवस्था (Marketing System) भी सही हालात में नहीं है। कृषि बाजार कई किलोमीटर के फासले पर होते हैं और इन बाजारों में स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा अन्य इंतजामों की अनदेखी होती रहती है। कुल मिलाकर उपरोक्त प्रयास किसान आत्महत्या को रोकने में नाकाफी सिद्ध हुए हैं क्योंकि किसानों की आत्महत्या की दर एक दशक में बढ़ी ही है, कम नहीं हुई।

किसान आत्महत्या की समस्या दूर करने हेतु उपाय (Measures to Solve the Problem of Farmer Suicide)

किसानों की आत्महत्या को रोकने के लिए किए जाने वाले उपायों को दो भागों में बांटा जा सकता है:–

त्वरित उपाय (Quick Measures)

1. किसान आत्महत्या के बाद परिवार के बाकी सदस्यों को तुरन्त राहत पहुँचाना चाहिए। मुआवजे को जल्द से जल्द परिवार तक पहुँचाना चाहिए।
2. इन घटनाओं के घटित होने पर क्षेत्र के हालात का जल्द से जल्द जायजा लेना चाहिए तथा अन्य किसानों की हालत सुधारने के लिए समुचित उपाय करने चाहिए।
3. घटनाओं के बाद परिवार के सदस्यों तथा आसपास के लोगों के मानसिक तनाव को दूर करने की कोशिश होनी चाहिए। यह कार्य मनोचिकित्सकों की देख-रेख में होना चाहिए।
4. एक सुरक्षा तंत्र जाल का निर्माण करना चाहिए, जो कृषकों तथा उसके उत्पादों को सुरक्षा प्रदान करे।
5. एक सूचना तंत्र का विकास करना चाहिए, जिसमें 24 घंटे कृषि सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने की व्यवस्था हो।

दीर्घकालिक उपाय (Long Term Measures)

1. कृषकों से सम्बन्धित नीतियों तथा प्रावधानों की पुनर्संरचना (Restructuring) की आवश्यकता है, जैसे–कृषकों की आसान साख तक पहुँच उपलब्ध कराना, बाजार तक पहुँच सुनिश्चित करना, न्यूनतम समर्थन मूल्य को सही तरीके से लागू करना इत्यादि।
2. आधारभूत संरचना का विकास तथा इसमें निजी निवेश को प्रोत्साहित करना चाहिए। इससे किसान अपनी फसलों की पैदावार बढ़ा सकेंगे तथा उत्पाद को सुरक्षित जमा रख सकेंगे, जिससे बाद में लाभ उठाया जा सके।
3. वाणिज्यिक कृषि के लिए किसानों को अग्रिम राशि (Advance Amount) की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे उन्हें ऋण लेकर खेती नहीं करनी पड़े।
4. अनुपूरक कृषि गतिविधियों जैसे- पशुपालन, कुक्कुट पालन, मत्स्यपालन आदि को बढ़ावा देना चाहिए, जिससे अतिरिक्त आय का सृजन हो।
5. फसल के विविधिकरण को प्रोत्साहन के साथ फसल के पैटर्न को भी निर्देशित किया जाना चाहिए, जिससे जोखिम में कमी आए।
6. किसानों को 'रेन वाटर हार्वेस्टिंग' (वर्षा जल संचय) तकनीकों की जानकारी देनी चाहिए। इसके साथ-साथ जल के कम उपयोग वाली तकनीकों तथा उपकरणों जैसे ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकल आदि के प्रयोग से जल संरक्षण करना चाहिए।
7. ऑर्गेनिक खेती को बढ़ावा देना चाहिए। इससे खाद तथा कीटनाशकों पर खर्च को कम या बंद किया जा सकता है।
8. बाजार तथा जलवायु की अनिश्चितता से बचने के लिए फसलों के विविधिकरण पर ध्यान देना चाहिए।
9. नकली खाद, बीज तथा कीटनाशकों के निर्माता तथा विक्रेताओं के लिए सख्त सजा के प्रावधान होने चाहिए।
10. जो साहूकार किसानों से ज्यादा ऋण वसूलते हैं उनके खिलाफ भी सख्त कार्यवाही की जानी चाहिए।
11. ग्राम पंचायतों को ऐसी व्यवस्था विकसित करनी चाहिए जिससे वे ऋणग्रस्त तथा आत्महत्या संभावित वाले किसानों की पहचान कर सकें और उन्हें संकट से निकाल सकें।
12. कमीशन एजेंटों, व्यापरियों तथा बिचौलियों (Middlemen) की भूमिका को कम करना चाहिए ताकि कृषक अपने उत्पाद पर अधिकतम कीमत पा सकें।
13. एक समग्र कृषि बीमा योजना लागू होनी चाहिए। नकदी फसलों जैसे–कपास, गन्ना, खाद्य तेल आदि पर खास ध्यान देना चाहिए।

विकास सम्बन्धी मुद्दें : संभावित प्रश्न

1. भारत में बढ़ती हुई विषमता ने आर्थिक सुधारों के विकास सम्बन्धी दावों पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। इस सम्बन्ध में अपन मत प्रस्तुत करें।
2. भारत में बढ़ती हुई विषमता को दूर करने हेतु हमें अपने विकास सम्बन्धी नीति में किस प्रकार के बदलावों की आवश्यकता है? स्पष्ट करें।
3. भारत में विभिन्न प्रकार की विषमताओं में वृद्धि के दुष्परिणामों की चर्चा करें।

4. पर्यावरण संरक्षण के प्रति अति जागरुकता ने भारत के विकास मार्ग में किस प्रकार नवीन बाधाएँ उत्पन्न की हैं? स्पष्ट करें।
5. पर्यावरण संरक्षण व विकास दोनों ही आवश्यक है। दोनों के मध्य संतुलन स्थापित करने हेतु अपना सुझाव प्रस्तुत करें।
6. भारत में उस वर्ग को विकास की सर्वाधिक कीमत चुकानी पड़ रही है, जो विकास के लाभों से सर्वाधिक वंचित है। स्पष्ट करें।
7. विस्थापन से उत्पन्न समस्याओं की चर्चा करें तथा इन समस्याओं के बेहतर समाधान हेतु उपाय सुझाएं।
8. किसान आत्महत्या हेतु उत्तरदायी कारणों की चर्चा करें तथा इसके समाधान हेतु समुचित उपाए सुझाएँ।
9. किसान आत्महत्या हमारी कृषि विकास सम्बन्धी नीति का दुष्परिणाम है। किसान आत्महत्या रोकने हेतु हमें अपनी कृषि विकास नीति में किस प्रकार के परिवर्तन लाने चाहिए।
10. एक बेहतर भारत के निर्माण हेतु विकास एवं पर्यावरण के मध्य पूरक सम्बन्ध की आवश्यकता है। स्पष्ट करें।

✪✪✪✪✪